एम.ए.राजनीति शास्त्र–द्वितीय सेमेस्टर

Semester – II

Paper Code –

पेपर III

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति–II

SYLLABUS SECOND SEMESTER

Paper-VIII International Polities-II

Unit-I

Globalization, New International Economic order, North-South Dialogue, South-South Co-operation.

Unit-II

Neo-Colonialism and Dependency Theory, Conflict resolution, World Bank and Polities of Environment.

Unit-III

Regional Co-operation, European Community, SAARC, ASEAN, OPEC and OAS, Arms Control and Disarmament.

Unit-IV

India's role in International Polities

India's Relations with its neighbours.

Distinguishing features of Indian Foreign Policy and Diplomacy.

विषय सूची

इकाई–I

1. वैश्वीकरण 5–11
2. नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था 11–21
3. दक्षिण–दक्षिण सहयोग 22–30
4. विश्व व्यापार संगठन 31–37

इकाई–II

5. नव–उपनिवेशवाद 38–44
6. निर्भरता का सिद्धान्त 45–53
7. संघर्ष समाधान 54–62
8. विश्व बैंक 63
9. पर्यावरण की राजनीति 64

इकाई–III

10. क्षेत्रीय सहयोग 65–70
11. दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय संगठन 71–78
12. दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्रो का संगठन 79–84
13. एंशिया–प्रशान्त महासागर आर्थिक सहयोग 85–88
14. अमेरिकी राज्यों का संगठन 89–92
15. शस्त्र–नियंत्रण और निःशस्त्रीकरण 93–112

इकाई–IV

16. भारत की विदेश नीति 113–127
17. भारत के पड़ोसियों से सम्बन्ध 128–154

अध्याय–1

वैश्वीकरण

अध्याय का ढ़ांचा

1.1 प्रस्तावना

1.1.1 अध्याय के उद्देश्य

1.2 वैश्वीकरण का अर्थ

1.3 विशेषताएं

1.4 ऐतिहासिक विकास

1.5 मूल्यांकन

1.5.1 पक्ष में तर्क

1.5.2 विपक्ष में तर्क

1.6 सारांश

1.7 प्रश्नावली

1.8 पाठन सामग्री

1.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण की अवधारणा वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवधारणा है। 1990 में साम्यवाद के पतन ने एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था को जन्म दिया। अमेरिका अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का एकमात्र नियामक बन गया। उसने ब्रिटेन के साथ मिलकर एक अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली की दिशा में प्रयास शुरू किया, 1990 के दशक में ब्रिटेनवुड व्यापार प्रणाली के स्थान पर बहुराष्ट्रीय निगमों का विस्तार होने लगा। इस दौरान यूरोपीय अर्थव्यवस्था सांझे बाजार से निकलकर यूरोपियन संघ के रूप में परिवर्तित हो गई। प्रशान्त क्षेत्र तथा दक्षिण पूर्व एशिया में भी ऐसी ही आर्थिक व्यवस्थाएं उत्पन्न हुई। न्यूयॉर्क, टोक्यों, और लन्दन में वित्तीय एवं प्रतिभूति बाजारों का उद्‌भव क्षेत्रीय एवं अन्तर क्षेत्रीय गठबन्धन के जरिए होने लगा। अब स्थानीय व राष्ट्रीय बाजारों का स्थान अंतर्राष्ट्रीय बाजार व्यवस्था ने ले लिया। पुरानी मौद्रिक प्रणाली का अन्त हो गया। नई मौद्रिक प्रणाली के जन्म ने मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित किया और नई उदारवादी आर्थिक प्रणाली के जन्म ने मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित किया और नई उदारवादी आर्थिक प्रणाली की स्थापना का रास्ता साफ कर दिया। आज आर्थिक तथा राजनीतिक गतिविधियां घरेलू क्षेत्र से निकलकर विश्व क्षेत्र में प्रवेश करने लगी हैं। आज उदारीकरण तथा निजीकरण के दौर में बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था का नारा महत्वपूर्ण हो गया है। अब अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप की संस्थाएं – अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व व्यापार संगठन अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। ये सब वैश्वीकरण के ही लक्षण हैं जो 1990 से शुरू होकर आज अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुके हैं।

1.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का मूल उद्देश्य शीतयुद्धोत्तर युम में स्थापित वैश्वीकरण की प्रक्रिया से अवगत करना है। इसके माध्यम से प्रयास किया गया है कि सन् 1991 के बाद प्रचलित वैश्वीकरण से क्या अभिप्राय है तथा इसकी क्या–क्या विशेषताएं है। इसकी उपयोगिता के पक्ष व विपक्ष में तर्क के माध्यम से इसकी प्रासांगिता जानने का प्रयास किया गया है। यह आंकलन इसके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रभाव, विशेषकर विकासशील देशों की स्थिति के सन्दर्भ में, जानने का प्रयास किया गया है।

1.2 विश्वीकरण का अर्थ

इसे भूमण्डलीकरण भी कहा जाता है। यह प्रक्रिया वस्तुतः व्यापारिक क्रिया–कलापों के अंतर्राष्ट्रीयकरण की द्योतक है जिसमें सम्पूर्ण विश्व बाजार को एक ही क्षेत्र के रूप में देखा जाता है। यह राष्ट्रीय बाजारों को विश्व बाजार में बदलने की प्रक्रिया है। इससे विश्व बाजारों में पारस्परिक निर्भरता में बदलने की प्रक्रिया है। इससे विश्व बाजारों में पारस्परिक निर्भरता बढ़ती है और व्यापार राष्ट्रीय सीमाओं से निकलकर विश्व व्यापार की ओर बढ़ने लगता है। यह राष्ट्रीय सीमाओं के आर–पार वस्तुओं एवं सेवाओं के आदान–प्रदान की प्रक्रिया है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय निगमों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कुछ विद्वान सम्पूर्ण संसार को एक भूमण्डलीय गांव मानने की अवधारणा को ही वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण कहते हैं।

"वैश्वीकरण संकीर्ण राष्ट्रीय व्यापारिक हितों के स्थान पर विस्तृत अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक हितों की स्थापना का नाम है। इसमें सम्पूर्ण विश्व सिमटकर एक हो जाता है।"

"वैश्वीकरण से तात्पर्य राष्ट्रीय बाजारों को अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में परिवर्तन करना है। इसमें विश्व व्यवस्था में आया खुलापन तथा आपसी निर्भरता का विस्तार भी शामिल है।"

एडवर्ड एस. हरमन के अनुसार, "वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण राष्ट्रीय सीमाओं के आर–पार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के फैलाव की सक्रिय प्रक्रिया भी है तथा साथ ही आर्थिक सम्बन्धों की एक संरचना भी है जिसका निरन्तर विकास हो रहा है।"

"अपने व्यापक अर्थ में वैश्वीकरण केवल शुद्ध आर्थिक प्रक्रिया नहीं है, अपितु यह तो विश्व के सभी भागों में बहने वाले लोगों के मध्य सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक संबंधों के विकास की व्यापक प्रक्रिया है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण अंतर्राष्ट्रीयवाद को दर्शाने वाली एक प्रक्रिया है। इसमें विभिन्न देशों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनको बनाए रखने के प्रयास भी शामिल हैं। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय हितों का अंतर्राष्ट्रीयकरण किया जाता है ताकि वैश्वीकरण की प्रक्रिया को उद्देश्य प्राप्त करने मु सुविधा रहे। इसका आधार मुक्त विश्व व्यापार व्यवस्था है। इसी पर सभी तरह के सम्बन्ध आधारित होते हैं।

1.3 विशेषताएं

बहुराष्ट्रीय निगमों की बढ़ती भूमिका ने पूंजी व मुद्रा पर लगे नियंत्रण तोड़ दिए हैं और मुक्त व्यापार को बढ़ावा दिया है। उनका कहना है कि इससे विकास दर में वृद्धि होगी, निर्धनता में कमी आएगी और विकासशील देशों का कल्याण होगा। इसलिए उन्होंने विश्व व्यापार संगठन का निर्माण किया है और अर्थव्यवस्था को बाजारोन्मुख बनाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक की भूमिका में बदलाव की अपेक्षा की है। जिस नए प्रकार की व्यवस्था की ओर हम जा रहे है, उसकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. श्रम बाजार अंतर्राष्ट्रीय हो गया है। 1965 में 71.5 करोड़ व्यक्ति रोजगार की दृष्टि से दूसरे देशों में प्रवाहित

हुए थे। अब यह संख्या 121.5 करोड़ तक पहुंच गई है।

2. आज विज्ञान प्रौद्योगिकी के विकास ने विश्व के देशों में भौगोलिक दूरियों को कम कर दिया है। इसके न केवल व्यापार, तकनीकी एवं सेवा क्षेत्र बल्कि आवागमन को भी सरल एवं सस्ता बना दिया है। आज कम्प्यूटर तथा इंटरनेट तेजी से दुनिया को जोड़ रहे है।

3. श्रम बाजार की मांगों को पूरा करने के लिए कई व्यवस्थित माध्यम तैयार हो गए हैं। आज श्रम एजेंटों की सक्रियता से श्रमिकों का अवैध या वैध व्यापार हो रहा है। श्रम आज तक देशों में पुराने प्रवासियों के नेटवर्क के कारण नए प्रवासियों को मार्ग दर्शन मिल रहा है।

4. इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रचार के कारण ग्लोबल संस्कृति का विकास हुआ है। पाप संगीत, हॉलीवुड फिल्म, जीन्स, टी शर्ट आज की युवा पीढ़ी की संस्कृति है जो विश्व के प्रत्येक देश में पाई जाती है। आज विश्व में उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हुआ है। आज भ्रष्टाचार तथा अपराधों की प्रवृति व उन्हें रोकने के तरीके समान हैं। आज आतंकवाद का स्वरूप भी अंतर्राष्ट्रीय हो गया है।

5. आज बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार प्रदायक की हो गई है। पहले ये केवल उत्पादित वस्तुओं, सेवाओं, तकनीक आदि की ही आवाजाही के साधन थे, आज विश्व में व्यापार विशेषज्ञों, प्रबन्धकों, कुशल–अकुशल श्रमिकों की नियुक्ति इन्हीं के द्वारा की जाती है। ये श्रम प्रवाह का सबल साधन है।

6. आज शिक्षा का भूण्डलीकरण हो गया है। आज अमेरिका जैसे विकसित देशों में उच्च शिक्षा के लिए जो विद्यार्थी जाते हैं, वहीं पर रोजगार प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी तरफ आज शिक्षा संस्थानों का अंतर्राष्ट्रयकरण हो गया है। किसी भी देश से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति कहीं भी किसी भी देश में रोजगार प्राप्त कर सकता है।

7. आज ब्रेनड्रेन की समस्या अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप की हो गई हैं। पहले की तुलना में आज डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षाविद् तथा वैज्ञानिक अधिक मात्रा में विदेशों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। आज विदेश आवागमन पहले की तुलना में अधिक आसान हो गया है।

1.4 ऐतिहासिक विकास

आज वैश्वीकरण की अवधारण इतनी विकसित हो चुकी है कि अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में यह अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों की प्रमुख भाषा बन गई है। यह कोई नवीन अवधारणा नहीं है। इसके बीच 1870 के आस–पास भी मिलते हैं। उस समय भी आज की अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था जैसे लक्षण स्पष्ट रूप से मौजूद थे। आज जो देश ओ.ई.सी.डी. (आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन) में शामिल हैं, उन सभी प्रमुख 16 औद्योगिक देशों का सकल घरेलू उत्पादन वर्ष 1900 में 18.2 प्रतिशत था और 1913 में 21.2 प्रतिशत हो गया था। विदेशी निवेश का भी यही हाल था। विश्व उत्पाद का 9 प्रतिशत हिस्सा निवेश में लगा हुआ था। स्थिर कीमतों पर यह निवेश 1980 के निवेश का 4/5 भाग था, अंतर्राष्ट्रीय बाजार की स्थितियां भी एक जैसी थी, उन दिनों दो देशों के बीच सामान, पूंजी और श्रम के आवागमन पर कोई रोक नहीं थी, यातायात के साधनों के विकास ने अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिए थे। उद्योगों में नई–नई प्रबन्ध तकनीकों का प्रयोग हो रहा था, उन दिनों ब्रिटेन का विश्व के अनेक देशों पर आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभुत्व था, पाउण्ड स्टरलिंग अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा की भूमिका निभा रहा था। श्रमिकों का अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह हो रहा था। 1830 से 1880 तक 5 करोड़ श्रमिकों का विदेशों में प्रवाह हुआ। 1914 तक यह प्रवास 6 करोड़ तक पहुंच गया। द्वितीय विश्वयुद्ध तक इसमें अधिक वृद्धि नहीं हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आई अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली के प्रयास हुए। अमेरिका ने इस व्यवस्था को अपने हाथ में लेकर अंतर्राष्ट्रीय मेलजोल के संदर्भ में स्वतन्त्र व्यापार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अपने प्रयास तेज कर दिए। उनके प्रयासों के परिणाम स्वरूप पुरानी अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक

प्रबन्धन की प्रणाली नई अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली में बदल गई। इससे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के संवर्द्धन, आर्थिक विकास और विश्व के विकसित बाजारों के बीच राजनीतिक सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस नई व्यवस्था को ब्रिटेनवुड व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। इसके बाद बहुराष्ट्रीय निगमों तथा क्षेत्रीय आर्थिक उप–व्यवस्थाओं ने विश्व बाजार की तरफ अर्थव्यवस्थाओं को प्रवाहित कर दिया। 1990 के दशक में यूरोपीय व्यवस्था यूरोपीयन संघ में बदल गई। एशिया तथा प्रशान्त क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ। इस तरह क्षेत्रीय तथा अन्तर क्षेत्रीय गठबन्धन के जरिए भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया तेज होने लगी। आज बहुराष्ट्रीय निगम अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आज भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण अपने चरम लक्ष्य के काफी समीप पहुंच गया। विश्व बाजार तथा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं इसके विकास में वैश्वीकरण अपने चरम लक्ष्य के काफी समीप पहुंच गया। विश्व बाजार तथा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया का नियंत्रण अमेरिका, ब्रिटेन आदि विकसित देशों के हाथ में है।

1.5 मूल्यांकन

1.5.1 पक्ष में तर्क

वैश्वीकरण के समान इसके पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यह विश्व के सभी लोगों के लिए विकास प्राप्त कर सकता है, तथा उन्हें लगातार कायम रहने वाले विकास के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता कर सकता है। महासचिव कोफी अन्नान ने अपने भाषण के शीर्षक – "हम दुनिया के लोग : 21 वीं शताब्दी में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका" में कहा कि वैश्वीकरण के लाभ स्पष्ट हैं – अधिक तेज गति से विकास, रहन–सहन का उच्चतर स्तर, देशों और व्यक्तियों के लिए नए–नए अवसर। इसके लिए हमें इसमें अपना महत्वपूर्ण योगदान देना चाहिए। श्रम मानदण्ड न्यायोचित होने चाहिए, मानवाधिकारों का आदर किया जाना चाहिए और पर्यावरण की सुरक्षा करनी चाहिए।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विश्व अर्थव्यवस्था की कई रूकावटें दूर कर दी हैं। इससे व्यापार में खुलापन आया है और विदेशी निवेश के प्रति उदारता में वृद्धि हुई है। इसके कारण वित्तीय व व्यापार क्षेत्र में उदार नीतियों का निर्माण किया गया है। आज जेट विमान, उपग्रह, इंटरनेट की वजह से देशकाल की सीमाएं अर्थहीन हो गई है। आज अंतर्राष्ट्रीय बाजार का उदारीकरण हो गया है। राष्ट्रीय सम्प्रभुताएं सीमाविहीन होने लगी हैं। दुनिया सिकुड़कर एक विश्व ग्राम बन गई है। इसने विश्व अर्थव्यवस्था में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिए हैं। आज विश्व व्यापार पर अंतर्राष्ट्रीय निगमों का ही कब्जा हो गया है। 1970–90 के दौरान विश्व के सकल घरेलू उत्पादन में विश्व व्यापार की भागेदारी 12 प्रतिशत से बढ़कर 18 प्रतिशत हो गई है। 1980–1996 के दौरान प्रत्यक्ष पूंजी निवेश 4.8 प्रतिशत से बढ़कर 10.6 प्रतिशत हो गया है। इस दौरान अंतर्राष्ट्रीय वित क्षेत्र का भी विकास हुआ है। विदेशी मुद्रा बाजार का विकास चौंकाने वाला है। 1983 में प्रतिदिन विदेंशी मुद्रा बाजार का विकास चौंकाने वाला है। 1983 में प्रतिदिन विदेशी मुद्रा बाजार में 60 अरब डॉलर का लेन देन होता था जो 1996 में 1200 अरब डॉलर तक पहुंच गया।

इस प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण सम्प्रभुता, स्वायत्तता और स्वतन्त्रता की संकीर्ण परिभाषाएं सिकुड़ गई हैं। संचार क्रांति और वैश्वीकरण ने जातीयता को गतिशील बना दिया है। आज विश्व का प्रत्येक देश एक दूसरे के काफी पास आ गया है। भौगोलिक दूरियां समाप्त हो गई है। इससे अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध नए रूप में पेश हुआ हैं। इसमें प्रत्येक व्यक्ति व देश को आर्थिक विकास में भागेदारी के अवसर प्रदान किए गए हैं। इसलिए अधिक तेज आर्थिक विकास तथा विकास के नए अवसर प्रत्येक को प्रदान करने के लिए भूमण्डलीकरण अथवा वैश्वीकरण बहुत अधिक जरूरी है।

1.5.2 विपक्ष में तर्क

यद्यपि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विश्व के देशों को कुछ लाभ भी पहुंचाया है, लेकिन उसने लोगों को नकारात्मक रूप में अधिक प्रभावित किया है। इसके लाभ न्यायोचित व समान नहीं हैं। विश्व बाजार अब तक सहभागी सामाजिक लक्ष्य पर आधारित नहीं हो सकता है। इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं –

1. वैश्वीकरण कमजोर देशों के लिए हानिकारक है। पार–सीमा व्यापार तथा निवेश कमजोर देशों के आर्थिक हित में नहीं है। यह इन देशों में लोकतन्त्रीय नियंत्रण को शिथिल कर देता है। इसमें आर्थिक सम्बन्ध राजनीतिक सम्बन्धों पर भारी पड़ते हैं। इसमें मुक्त व्यापार तथा सुरक्षावाद के बीच टकराव पैदा हो जाता है।
2. वैश्वीकरण विकसित देशों के हितों का पोषक है। बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विकसित देशों के हितों के संवर्द्धन में ही कार्य करती है। इसके कारण उत्पादकता तथा निवेश दरें काफी गिरी हैं। बढ़े हुए वित्तीय प्रवाह ने पूंजी बाजारों में अधिक तरलता तथा वास्तविक ब्याज दरों को काफी ऊँचा किया है। इससे शेयरों की खरीद तथा सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिला है। इस प्रक्रिया ने विकसित देशों को ही ज्यादा लाभ पहुंचाया है, विकासशील देशों को नहीं।
3. इसने विकसित और विकासशील देशों के बीच आय की असमानता को बढ़ा दिया हैं। बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियों ने कम वेतन पर ही अच्छा कारोबार करके विकसित देशों को अधिक लाभ पहुंचाया है। 1960 में यह अन्तर 30:1 का था, जो अब 82:1 का हो गया है। इसी कारण विकासशील देश पूंजी पलायन का सहन करके भी विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं।
4. इसने विकासशील देशों पर ऋणों के भार को बढ़ा दिया है और इससे विश्व में वित्तीय संकट आने की संभावना बढ़ गई है।
5. वैश्वीकरण का संस्थागत ढांचा भी भेदभावपूर्ण है। इसमें एक तरफ तो व्यापार तथा पूंजी प्रवाह को मुक्त आधार प्रदान किया गया है और दूसरी तरफ तकनीक तथा श्रम प्रवाह को रोका जा रहा है। विकसित देशों की तो यह इच्छा है कि विकासशील देश अपने बाजारों को उनके लिए खोल दें लेकिन तकनीकी हस्तांतरण की मांग न करें।
6. यह प्रक्रिया राष्ट्रीय सम्प्रभुता का हनन करती है। विश्व व्यापार संगठन के दायरे में राष्ट्रीय सम्प्रभुता के विषय भी आ गए हैं। वैश्वीकरण किसी राष्ट्र की आर्थिक गतिवधियों और सामाजिक सम्बन्धों को भी प्रभावित करने में सक्षम हैं।
7. इससे स्थानीय व्यापारिक हितों को अधिक हानि हो रही है। इसने स्थानीय व्यापारिक निगमों को बहुराष्ट्रीय निगमों का पिछलग्गू बना दिया है।
8. यह नव–उपनिवेशवाद को मजबूत बना रहा है। मौजूदा विश्व आर्थिक संस्थाएं विकसित देशों को लाभ पहुंचा रही हैं और विकासशील देशों का शोषण कर रही हैं।

इस प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने विकासशील देशों को ही अधिक नुकसान पहुंचाया है। इसने लोकतंत्र को कमजोर किया है। इसने आर्थिक शक्ति को राजनीतिक शक्ति पर हावी कर दिया है। इससे बहुराष्ट्रीय निगम विकसित देशों के हितों में कार्य करने वाली संस्था बन गए हैं। इसमें अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन एवं विश्व बैंक विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने की दिशा में ही कार्य कर रहे हैं। आज अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक समझौते विशिष्ट व्यापारिक वर्ग के हितों के पोषक हो गए हैं, इसने विकसित देशों के उद्योगों की तो सुरक्षा की है, लेकिन विकासशील देशों के उद्योगों को पतन की ओर धकेल दिया है। इसने

विकसित तथा विकासशील देशों में आय के अन्तर को अधिक बढ़ा दिया है।

इन कमियों के बावजूद भी यह कहा जा सकता है। कि इस प्रक्रिया ने अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इसने संयुक्त राष्ट्र संघ और इससे संबंधित आर्थिक संस्थाओं की भूमिका के महत्व को बढ़ा दिया है। इसमें अर्थव्यवस्था का अंतर्राष्ट्रीयकरण कर दिया है। इसलिए आवश्यकता इसको समाप्त करने की नहीं है, बल्कि आवश्यकता इसके संकीर्ण लक्ष्यों को समाप्त करने की है। इसके लिए मुक्त व्यापार नीतियों को दबाव मुक्त बनाया जाना चाहिए। आज विश्व व्यापार संगठन के विश्वव्यापी खतरों से निपटने के लिए काफी सहयोगी की आवश्यकता है। इसलिए इसके आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दुष्प्रभावों को समाप्त करके अंतर्राष्ट्रीय विकास एवं समृद्धि की प्रक्रिया के रूप में इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाए। इससे विश्वीकरण के लाभ विकासशील देशों को भी मिलने लगेंगे और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में एक नए युग की शुरूआत होगी।

1.6 सारांश

शीतयुद्धोत्तर युग में साम्यवादी युग की समाप्ति के बाद वैश्वीकरण की विचारधारा को एकमात्र विकल्प के रूप में देखा गया। इसके अन्तर्गत उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का नारा देकर दुनियाँ में मुक्त बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत पूंजीवाद का वैश्वीक स्वरूप स्थापित किया। इसमें मूलतः पूंजी के वर्चस्व को स्थापित करने पर बल दिया गया। परन्तु तीन दशकों के उपरान्त जहां एक ओर पूंजीपती देश इसके समर्थन में खड़े है वहीं विकासशील देशों में विरोधी तर्क भी दिए जा रहे है। परन्तु इस गैर–ध्रुवीकृत विश्व व्यवस्था एवं अराजकता वाले राजनीतिक पर्यावरण में इन दोनों पक्षों में किस प्रकार समन्वय स्थापित होकर मानवीय सरोकारों का महत्त्व बढ़ेगा यह कहना अभी कठिन है।

1.7 प्रश्नावली

1. वैश्वीकरण की अवधारणा से आपका क्या अभिप्राय है। इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. वैश्वीकरण प्रक्रिया की उपयोगिता के पक्ष में तर्क दीजिए।
3. वैश्वीकरण प्रक्रिया से होने वाले दुष्प्रभाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. वैश्वीकरण प्रक्रिया के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ने वाले प्रभावों का अंकिलन कीजिए।
5. वैश्वीकरण प्रक्रिया किस प्रकार से विकासशील देशों की आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं को प्रभावित कर रही है? टिप्पणी करें।

1.8 पाठन सामग्री – वहीं, अध्याय –1

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–2

नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था

अध्याय का ढ़ांचा

2.1 प्रस्तावना

2.1.1 अध्याय के उद्देश्य

2.2 नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अर्थ

2.3 नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त

2.4 ऐतिहासिक विकास

2.5 नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग के निर्धारक तत्त्व

2.5.1 नव–उपनिवेशवाद

2.5.2 बहुराष्ट्रीय नियमों की लज्जापूर्ण भूमिका

2.5.3 उत्तर तथा दक्षिण देशों में गहरा अन्तर

2.5.4 विकसित और विकासशील देशों में निरन्तर बढ़ता अन्तर

2.5.5 विश्व की आय व साधनों का एक पक्षीय शोषण

2.5.6 बढ़ती अन्तर्निभरता

2.5.7 गैट तथा विश्व व्यापार संगठन की अप्रभावशीलता

2.5.8 नई अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियां

2.5.9 ब्रेटनवुड की असफलता

2.6 प्रमुख मुद्दे एवं धारणाएं

2.6.1 वर्तमान विश्व अर्थव्यवस्था में संस्थागत परिवर्तन

2.6.2 अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व व्यापार में संरक्षणवाद की नीति का अन्त

2.6.3 बहुराष्ट्रीय निगमों की लज्जास्पद भूमिका पर नियंत्रण

2.6.4 वस्तु उत्पादकों के हितों का संरक्षण

2.6.5 विकासशील देशों की आत्मनिर्भरता में वृद्धि

2.6.6 तकनीकी आदान–प्रदान

2.6.7 पूंजी स्त्रोतों का हस्तांतरण

2.6.8 ब्रेटनवुड व्यवस्था में पूर्ण संशोध

2.7 सारांश

2.8 प्रश्नावली

2.9 पाठन सामग्री

2.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद सभी नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों के सामने सबसे बड़ी समस्या आर्थिक विकास की थी। इन सभी राष्ट्रों की अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में स्वतन्त्र भूमिका अदा करने के रास्ते में आर्थिक साधनों की कमी आड़े आई। अधिकतर नवोदित राष्ट्रों को अपने आर्थिक विकास के लिए विकसित देशों का मुंह ताकना पड़ा। विकसित देशों ने आर्थिक सहायता के नाम पर उनके ऊपर इतनी अधिक कठोर शर्ते लगा दी कि ये सभी देश एक–एक करके नए प्रकार के साम्राज्यवाद के शिकार हो गए, जिसे आर्थिक साम्राज्यवाद या नव–उपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत दी जाने वाली आर्थिक सहायता प्रदान करने वाली आर्थिक संस्थाओं की शर्मनाक भूमिका के कारण सभी नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति अत्यंत चिन्ताजनक होती गई। इससे विकसित व नवोदित विकासशील राष्ट्रों के मध्य आर्थिक सम्बन्धों में गहरी खाई उत्पन्न हो गई। इसने अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को अधिक शोषणपूर्ण तथा भेदभावपूर्ण बना दिया और विकासशील देशों को इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाने को बाध्य कर दिया। धीरे–धीरे तृतीय विश्व (विकासशील) के देशों में एकता व एकीकरण के प्रयास तेज होने लगे जिनका उद्देश्य नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की पुरजोर मांग करना था ताकि विकसित और विकासशील देशों के डील की आर्थिक असमानता को कम किया जा सके। इस तरह नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग का जन्म हुआ और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1974 में महासभा के विशेष अधिवेशन में इसका अनुमोदन का दिया गया।

2.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य विकासशील देशों द्वारा नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग तथाउसके लागू होने की स्थिति की उचित जानकारी प्रदान करना है। सर्व प्रथम, यह नई आर्थिक व्यवस्था क्या है तथा किन सिद्धान्तों पर आधारित है इसकी चर्चा की गई है। इसके बाद इस प्रकार की मांग करने के पीछे प्रमुख कारणों का अति विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके साथ–साथ इस अवधारणा से जुड़े प्रमुख मुद्दों एवं धारणाओं का स्पष्ट वर्णन किया गया है। अन्ततः किस प्रकार वैश्वीकरण की दौड़ ने इस मुद्दे को गौण स्थिति में पहुंचा दिया है कि जानकारी दी गई है।

2.2 नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अर्थ

नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान भेदभावपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों का निर्धारण नए सिरे से करना है। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समर्थक देशों का मानना है कि विकसित और विकासशील देशों में गहरी आर्थिक असमानता है। वर्तमान व्यवस्था धनी या विकसित देशों के हितों की ही पोषक है। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का उद्देश्य वर्तमान व्यवस्था को समाप्त करके इसे न्यायपूर्ण व समान बनाना है ताकि यह विकासशील देशों के भी हितों की पोषक बन जाए। इसका प्रमुख ध्येय नव–उपनिवेशवाद को समाप्त करके अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं को अधिक तर्कसंगत बनाना है ताकि थोड़े से विकसित देशों द्वारा बड़ी संख्या वाले विकासशील देशों के आर्थिक शोषण को रोका जा सके।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था वर्तमान भेदभावपूर्ण व आर्थिक असमानता पर आधारित अर्थव्यवस्था को समाप्त करने के उद्देश्य से तृतीय विश्व के देशों द्वारा उठाई गई मांग है ताकि

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध न्यायपूर्ण व अधिक तर्कसंगत बने और नव–उपनिवेशवाद के सभी साधन इस तरह से संचालित हों कि विकासशील देश भी विकसित देशों की तरह आर्थिक विकास के मार्ग पर चल सकें।"

साधारण शब्दों में, नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था वर्तमान अर्थव्यवस्था को समाप्त करके नए सिरे से स्थापित करने का मार्ग है ताकि विकसित देशों द्वारा अविकसित देशों का औपनिवेशिक शोषण रूक जाए और विश्व की आय तथा साधनों का न्यायपूर्ण व समान बंटवारा हो ताकि उत्तर–दक्षिण का अन्तर समाप्त हो जाए।

2.3 नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त

वर्तमान पक्षपातपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को समाप्त करके नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य विद्यमान आर्थिक समानता को कम करना है ताकि विकासशील देश भी आर्थिक विकास के रास्ते पर चल सकें। इसके लिए विकासशील देशों ने नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के बारे में कुछ सिद्धान्त बताएं है जो निम्नलिखित हैं –

1. विश्व मुद्रा प्रणाली का सामान्यीकरण करना
2. विकासशील तथा विकसित देशों के बीच विद्यमान तकनीकी भेद को कम करना
3. विकसित देशों द्वारा विकासशील राष्ट्रों के वित्तीय बोझ को कम करना
4. बहुराष्ट्रीय निगमों तथा अन्य आर्थिक संस्थाओं को तर्कसंगत बनाना
5. विकासशील देशों को विकसित देशों के साथ व्यापार की वरीयता देना
6. विकासशील देशों द्वारा उत्पादित औद्योगिक माल के निर्यात को प्रोत्साहन देना
7. कच्चे माल की कीमत घटना–बढ़ाने की प्रवृति का विरोध तथा कच्चे माल व तैयार माल की कीमतों में कम अन्तर होना
8. कच्चे माल तथा समस्त आर्थिक क्रियाकलापों पर राष्ट्रीय सम्प्रभुता को स्वीकार करना।

उपरोक्त सभी सिद्धान्त नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए आवश्यक हैं। ये एक तरह से विकासशील देशों द्वारा नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना करने हेतु सुझाई गई प्रमुख बातें हैं। इन्हीं पर नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का ढांचा खड़ा किया जा सकता है।

2.4 ऐतिहासिक विकास

नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग सर्वप्रथम 1964 में आयोजित गुटनिरपेक्ष देशों के काहिरा सम्मेलन में उठाई गई, इसके बाद 1970 के लुसाका गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन में इसी बात को दोहराया गया। 1973 में गुटनिरपेक्ष देशों के अलजीयर्स सम्मेलन में धनी या विकसित देशों की शोषक प्रवृति को बढ़ावा देने वाली अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का घोषणा पत्र अपनाया गया। इसमें प्राकृतिक देशों को तकनीकी ज्ञान उपलब्ध कराने, उनके व्यापार को वरीयता देने तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की गतिविधियों पर नियंत्रण स्थापित करने का सिद्धान्त अपनाया गया। इसके बाद 1975 के लीमा सम्मेलन में विकासशील राष्ट्रों द्वारा निर्यातित कच्चे माल के मध्यवर्ती भण्डारों तथा प्राथमिक उत्पादों के लिए वित्तीय सहायता देने हेतु एक संचित कोष की स्थापना करने पर सहमति हुई। 1975 में ही विकसित तथ विकासशील देशों के 28 प्रतिनिधियों ने पेरिस में बैठक की। इसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग की समस्या पर विचार करना था लेकिन इसके कोई ठोस परिणाम नहीं निकले। 1976 के कोलम्बो गुटनिरपेक्ष

सम्मेलन में भी इस बारे में विचार किया गया। इसमें विकासशील देशों में पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देने की बात कही गई।

1981 की केनकुन शिखर वार्ता में भी विकासशील तथा विकसित देशों के बीच विश्व अर्थव्यवस्था सम्बन्धी वार्तालाप हुआ। लेकिन यह वार्ता उत्तर–दक्षिण के आर्थिक सम्बन्धों पर सर्वमान्य निर्णय तक नहीं पहुंच सकी। 1982 में नई दिल्ली में दक्षिण–दक्षिण सहयोग को बढ़ाने के लिए एक बैठक का आयोजन हुआ। इसमें सामूहिक आत्मनिर्भरता के लिए सहयोग के महत्व को सर्वसम्मति से मान्यता देने के साथ यह सम्मेलन समाप्त हो गया। इसके बाद दक्षिण–दक्षिण सहयोग पर जुलाई 1985 को नई दिल्ली में बैठक हुई। इसमें भी सामूहिक आत्म–निर्भरता के लिए कार्य करने का आह्वारन किया गया। इसके बाद जून 1987 में दक्षिण–दक्षिण सहयोग पर गुटनिरपेक्ष देशों की बैठक हुई। यह नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की ओर अच्छा कदम था। इसके बाद मार्च 1988 में दक्षिण–दक्षिण आयोग की बैठक कुआलालम्पुर में हुई। इसमें विकासशील देशों की आर्थिक समस्याओं से लड़ने के लिए एक बहुमुखी रणनीति का निर्माण करने पर विचार हुआ। इसके बाद G-15 की बैठक 1990 में कुआलालम्पुर में हुई। G-15 विकासशील देशों का एक समूह है। इसमें दक्षिण–दक्षिण सहयोग को मजबूत बनाने के प्रयास किए गए। G-15 की कारकास बैठक में यह कहा गया कि विकासशील देश भी अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में महान भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए तृतीय विश्व की एकता व सहयोग पर बल देना चाहिए। इसमें क्षेत्रीय तथा उपक्षेत्रीय व्यापार संगठन कार्यक्रमों को तृतीय विश्व के हितों में तकनीकी हस्तांतरण पर निर्भर हुआ। इसमें G-7 के साथ निरन्तर वार्तालाप को जारी रखने की वचनबद्धता को भी दोहराया गया। इसके बाद G-15 का नई दिल्ली में शिखर सम्मेलन हुआ। इसमें दक्षिण–दक्षिण सहयोग पर बल दिया गया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतन्त्रीकरण करने की मांग का समर्थन किया गया। इसके बाद G-15 के ब्यूनेस ऐरिस सम्मेलन में G-7 के साथ सभी अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर वार्तालाप शुरू करने की सिफारिश की गई। इसमें वर्तमान विश्वीकरण की प्रक्रिया को विकासशील देशों के हितों के विपरीत बताया गया। इसके बाद G-15 की जमैका बैठक में विश्व आर्थिक व्यवस्था में विकासशील देशों को अधिक महत्व दिए जाने तथा इसमें संस्थागत सुधारों की मांग की गई। G-15 के काहिरा (2000) सम्मेलन में भी असमान विश्व अर्थव्यवस्था पर विचार किया गया और WTO को अपने उत्तरदायित्वों को विकासशील देशों की समस्याओं के सन्दर्भ में निर्धारित करने का आह्वान किया। इस तरह G-77, दक्षिण–दक्षिण सहयोग, G-15 गुटनिरपेक्ष सम्मेलन आदि द्वारा NIEO की मांग बार–बार उठाई जाती रही है। लेकिन विकसित राष्ट्रों का रूख अब तक नकारात्मक ही रहा है।

2.5 नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग के निर्धारक तत्व

नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों ने अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को नए ढंग से स्थापित करने की जो पुरजोर मांग की है, उसके पीछे कुछ ठोस कारण हैं नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग को जन्म देने वाले प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं

2.5.1 नव–उपनिवेशवाद

नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों पर पुराना साम्राज्यवादी नियंत्रण तो समाप्त हो चुका है और उसकी जगह नए प्रकार के साम्राज्यवाद ने ले ली है। इसे नव उपनिवेशवाद या आर्थिक साम्राज्यवाद के नाम से जाना जाता है। आज अधिकतर विकासशील या पिछड़े देश विकसित देशों के उपनिवेशीय नियंत्रण में रह रहे हैं। राजनीतिक रूप से देखने में तो विकासशील देश प्रभुसत्ता सम्पन्न हैं लेकिन व्यवहार में विकसित देशों द्वारा नव उपनिवेशीय नियंत्रण के रूप में उनकी राजनीतिक क्रियाओं में पूरा हस्तक्षेप है। अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ये देश निरन्तर आर्थिक विकास के लिए आर्थिक सहायता के रूप में विकसित देशों की अन्यायपूर्ण आर्थिक नीतियों का शिकार हैं। उनकी दयनीय आर्थिक स्थिति के लिए साम्राज्यवादी शक्तियां भी उत्तरदायी हैं। अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले भी इन विकसित देशों ने इनका आर्थिक शोषण किया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी यह प्रक्रिया बन्द नहीं हुई।

विकासशील देशों की वित्तीय सहायता प्राप्त करने की आर्थिक मजबूरियां नव उपनिवेशीय शोषण की प्रवृति का ही परिणाम हैं। आज नव उपनिवेशवाद के अंतर्गत सैनिक सहायता, बहुराष्ट्रीय निगम, संरक्षणवादी व्यापार, संधियों में साझेदारी, हस्तक्षेप आदि साधनों द्वारा विकसित राष्ट्र विकासशील देशों को अपनी आर्थिक नीतियों का शिकार बना रहे हैं। आज WTO, IMF जैसी विश्व आर्थिक संस्थाएं भी इन विकसित देशों के हितों की ही पोषक हैं। इसलिए इस नव–उपनिवेशीय नियंत्रण को विकासशील राष्ट्र समाप्त करने की दिशा में ठोस उपाय कर रहे हैं। दक्षिण–दक्षिण सहयोग के प्रयास करना इसी का परिणाम है ताकि क्षेत्रीय सहयोग में वृद्धि करके तथा विकसित देशों पर पारस्परिक अन्तर्राष्ट्रीय में कमी करके उपनिवेशीय नियंत्रण में कमी लाई जा सके। दक्षिण–दक्षिण सहयोग को बढ़ावा देना नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का ही एक सिद्धान्त है। जो NIEO की मांग में वृद्धि करता है।

2.5.2 बहुराष्टीय निगमों की लज्जापूर्ण भूमिका

ये निगम विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं में दीमक की तरह प्रवेश कर रहे हैं और अपनी कार्यप्रणाली द्वारा उनकी अर्थव्यवस्थाओं को भारी नुकसान पहुंचा रहे हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान आदि विकसित देशों के 800 बड़े–बड़े बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील देशों में विकसित राष्ट्रों की भुजा के रूप में कार्य कर रहे हैं। विकासशील देशों में पूंजी निवेश करके इनको कई गुणा मुनाफा प्राप्त हो रहा है। समस्त विश्व के कुल उत्पादन के 50 प्रतिशत से अधिक भाग पर इनका ही कब्जा है। विकसित देशों की विकसित तकनीक इनका प्रमुख साधन है। जिसके बल पर ये विकासशील देशों में कच्चे माल को तैयार माल में बदलकर वही मंडियों में बेचकर भारी लाभ प्राप्त कर रहे हैं। भारत जैसे अति विकासशील देश भी इनके जाल में फंसते जा रहे हैं। कम विकासशील देशों की स्थिति तो ज्यादा बदतर है। इन निगमों ने विकासशील देशों की मंडियों और तकनीक के रास्ते में बहुत सारी रूकावटें पैदा कर रखी हैं जिससे विकासशील देशों की उत्पादित वस्तुएं अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाती हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों की लज्जास्पद भूमिका के कारण विकासशील देश लगातार कच्चे माल की मंडियां बनती जा रही हैं और इस पर विकसित राष्ट्रों की पकड़ मजबूत होती जा रही है। विकासशील देशों के पास बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा पैदा किए गए अवरोधों की कोई काट नहीं है। ये निगम नव–उपनिवेशवाद का एक मजबूत साधन होने के नाते विकसित देशों के हितों में ही वृद्धि कर रहे हैं और विकासशील देशों का भरपूर आर्थिक शोषण कर रहे हैं। आज अधिकतर विकासशील देश विकसित देशों की इस चाल को समझ चुके हैं कि बहुराष्ट्रीय निगम भी विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर पिना नियंत्रण स्थापित करने का एक साधन हैं। इसलिए विकासशील देश बहु–राष्ट्रीय निगमों की शोषणकारी भूमिका को समान्त करने के उद्देश्य से नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की मांग करते है

2.5.3 उत्तर तथा दक्षिण देशों में गहरा अन्तर

आज उत्तर–दक्षिण में गहरी खाई है। उत्तर के विकसित देश जो 30 प्रतिशत जनसंख्या वाले हैं, विश्व के 70 प्रतिशत जनसंख्या वाले विकासशील देशों पर अपना आर्थिक वर्चस्व कायम किए हुए हैं। विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय औसतन 100 पौंड है, जबकि विकसित देशों में यह 3000 से 6000 पौंड तक है। आज विकासशील देशों में आर्थिक विकास के नाम पर गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार जैसी समस्याएं विद्यमान हैं, जबकि विकसित देश विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं। ये सभी देश विकासशील देशों का आर्थिक शोषण करके ही फल–फूल रहे हैं। आज विकासशील देशों के पास शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए आर्थिक साधनों की कमी आड़े आ रही है। इन देशों में लोगों को भरपेट भोजन भी नहीं मिल रहा और कुपोषण की समस्या निरंतर बढ़ रही है। विश्व अर्थव्यवस्था के असंतुलित विकास ने विकासशील देशों की समस्याओं को और अधिक बढ़ाया है। इससे उत्तर–दक्षिण में गहरा अन्तर पैदा हो गया है। विकासशील देशों की यही मांग है कि विश्व अर्थव्यवस्था का नए रूप में गठन हो ताकि विकसित व विकासशील देशों में पैदा हुई गहरी खाई को पाटा जा

सके। अर्थात् नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना ही विकसित राष्ट्रों द्वारा विकासशील देशों का आर्थिक शोषण रोककर उत्तर दक्षिण के अन्तर को कम कर सकती है।

2.5.4 विकसित और विकासशील देशों में निरन्तर बढ़ता अन्तर

आज अमीर राष्ट्र और अमीर होते जा रहे हैं और गरीब राष्ट्र अधिक गरीब होते जा रहे हैं। यह सब वर्तमान अन्यायपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों का ही परिणाम है। इसी से विकसित तथा विकासशील देशों में अन्तर निरन्तर बढ़ रहा है। ऊर्जा संकट ने विकसित देशों को उन्नत तकनीक के बल पर विकासशील राष्ट्रों का शोषण करने के योग्य बनाया है। इसने उत्तर दक्षिण के अन्तर को बढ़ाया है। आज UNCTAD तथा GATT जैसी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं भी इस अन्तर को कम करने में नाकामयाब रहे हैं। इन संगठनों की प्रवृति भी विकसित देशों की ओर ही है। इन्होंने विकासशील देशों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया है। ऊर्जा संकट, विश्व व्यापार में कड़ी प्रतिस्पर्धा, बहुराष्ट्रीय निगमों की लज्जास्पद भूमिका, विश्व व्यापार संगठन की अपर्याप्तता, विकासशील राष्ट्रों को प्राप्त होने वाली कम आर्थिक सहायता, विकासशील देशों का तकनीकी पिछड़ापन आदि ने उत्तर दक्षिण (विकसित विकासशील) के अन्तर में वृद्धि करने में सहायता की है। इससे विकासशील देशों में मुद्रा स्फीति की दर बढ़ रही है और उनका भुगतान संतुलन का घाटा अत्यंत रूप से बढ़ चुका है। जिसे नियंत्रित करना विकासशील देशों के वश की बात नहीं है। आज तीसरा विश्व भयानक आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं के दौर से गुजर रहा है। विश्व व्यापार में विकासशील देशों का योगदान निरन्तर घट रहा है। आज तृतीय विश्व के देश मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित हैं। विश्व के विकसित देशों का विलासपूर्ण जीवन निरंतर बढ़ रहा है। 1990 के बाद तो विकासशील देशों का आर्थिक पिछड़ापन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। इससे विकासशील देशों का चिन्तित होना स्वाभाविक है। इसलिए वे इस अन्तर को कम करके न्यायपूर्ण विश्व अर्थव्यवस्था की स्थापना की बात करते हैं।

2.5.5 विश्व की आय व साधनों का एक पक्षीय शोषण

आज विश्व के थोड़े से ही विकसित राष्ट्र बहुसंख्यक विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक साधनों पर अपना वर्चस्व बनाए हुए हैं और ऐसा करके वे विकासशील राष्ट्रों का आर्थिक शोषण कर रहे हैं। तकनीकी ज्ञान के बल पर विकसित राष्ट्र आर्थिक साधनों पर अपने वर्चस्व को औचित्यपूर्ण ठहराते हैं। इनका कच्चे माल और निर्मित माल पर पूरा एकाधिकार है। वे विकासशील देशों का कच्चा माल बेचने तथा तैयार माल बेचने के उद्देश्य में नव–उपनिवेशीय तरीकों का प्रयोग करके सफल हो जाते हैं। उनका ध्येय अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। इसलिए वे तृतीय विश्व को इसके सर्वथा अनुकूल समझते हैं और उसके आर्थिक साधनों का खूब शोषण करते हैं। IMF, World Bank तथा WTO भी उसकी इस काम में पूरी मदद करते हैं। इनकी आड़ में विकसित देश विकासशील देशों की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करके अपने आर्थिक हितों को ही पोषित करते हैं। ये संस्थाएं ही उनके आर्थिक साम्राज्यवाद को सुदृढ़ बनाती हैं और विश्व के आर्थिक साधनों को एक पक्षीय झुकाव में सहायता करती है। इससे तृतीय विश्व के देशों का आर्थिक शोषण बढ़ जाता है और NIEO की मांग का उदय होता है।

2.5.6 बढ़ती अंतर्निभरता

आज विश्व के विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में पारस्परिक निर्भरता में लगातार वृद्धि हो रही है। विकसित देशों को कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने के लिए मंडियों की आवश्यकता है जिसे विकासशील देश ही पूरा कर सकते हैं। इसी तरह कम–विकसित या विकासशील देशों को अपने आर्थिक विकास के लिए आर्थिक सहायता व तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के लिए विकसित देशों की ओर देखना पड़ रहा है। लेकिन विकसित राष्ट्र विकासशील देशों का शोषण करने की नीतियों को अमल में ला रहे हैं। विकसित तकनीक तथा राजनीतिक व सैनिक श्रेष्ठता के बल पर विकसित राष्ट्र विकासशील देशों पर अपना आर्थिक नियंत्रण सुदृढ़ कर रहे हैं।

विकासशील देशों का यह सोचना कि पारस्परिक अन्तनिर्भरता से उनका भला होगा, गलत साबित हो रहा है। पारस्परिक अन्तर्निर्भरता ने आज विकसित राष्ट्रों की भूमिका को नकारात्मक बना दिया है। इसने नव–उपनिवेशवाद को बढ़ावा दिया है। इसलिए विकासशील राष्ट्र यह अनुभव करने लगे हैं कि सार्वभौमिक अंतनिर्भरता के कारण वर्तमान विश्व अर्थव्यवस्था अधिक अप्रासांगिक बन गई है। इसलिए इसे अधिक न्यायसंगत बनाने के लिए इसकी पुनः संरचना करना आवश्यक हो गया है। लेकिन विकसित राष्ट्र इसका विरोध करके इसके मार्ग में बाधाएं उत्पन्न कर रहे हैं।

2.5.7 गैट तथा विश्व व्यापार संगठन की अप्रभावशीलता

इन संगठनों का निर्माण इसलिए हुआ था कि इससे बहुपक्षीय व्यापार को बढ़ावा मिले। पहले यह काम GATT का या WTO करता है। इसकी स्थापना का उद्देश्य सदस्य देशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों को बढ़ाना है। अंतर्राष्ट्रीय सन्धियों के तहत इसे विश्व व्यापार के पुलिसमैन की भूमिका अदा करें। लेकिन आज नया GATT या WTO विकसित और विकासशील देशों की समस्याओं का हल करने में नाकामयाब रहा है। इसने श्रम कानूनों, पेटेंट तथा कॉपीराइट के बारे में कानूनों को और अधिक जटिल बना दिया है। आज आलोचक यह कहते हैं कि WTO बहुराष्ट्रीय निगम के लिए विश्व विजय का प्रतीक है। इससे विकासशील देशों को आर्थिक शोषण में वृद्धि हुई है। इसलिए तृतीय विश्व के देश नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की स्थापना की पुरजोर मांग करते हैं ताकि न्यायपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों का विकास हो।

2.5.8 नई अंतर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियां

1990 के बाद शीत युद्ध के अन्त ने तृतीय विश्व की समस्याओं को और अधिक बढ़ा दिया है। आज विकसित देशों का रूख पूर्वी यूरोप के देशों की ओर है। अये देश पूर्वी यूरोप को अधिक से अधिक आर्थिक लाभ पहुंचा रहे हैं ताकि वहां पर साम्यवाद का अजगर फिर से न आ जाए। इससे विकासशील देशों को आर्थिक सहायता बहुत कम ही मिलने लगी है। इसने उनकी आर्थिक विकास की गति को बहुत धीमा कर दिया है। इसलिए तृतीय दुनिया के देश और अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए विश्व अर्थव्यवस्था को न्यायपूर्ण व समान बनाने की वकालत करते हैं।

2.5.9 ब्रेटनवुड की असफलता

वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ब्रेटनवुड में हुए व्यापार समझौते के ही तहत हो रहा है। इसने अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को अन्यायपूर्ण व असमान बना दिया है। बढ़ते भुगतान घाटे तथा भेदभावपूर्ण ऋण व्यवस्था ने यह सिद्ध कर दिया है कि वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था अन्यायपूर्ण है। यह विकसित देशों की शोषणकारी प्रवृत्ति को और अधिक बढ़ावा दे रही है। इससे विकासशील देशों के हितों की बजाय विकसित देशों के ही हितों का पोषण हो रहा है। इसलिए विकासशील देश वर्तमान ब्रेटनवुझ प्रणाली को समाप्त करके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था को अधिक सामान्य बताना है ताकि विकासशील देश वर्तमान ब्रेटनवुड प्रणाली को समाप्त करके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था को अधिक सामान्य बताना है ताकि विकासशील देशों को भी व्यापार में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने का अवसर प्राप्त हो और नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की स्थापना हो।

इस प्रकार उत्तर–दक्षिण में गहरे अन्तर, सावैभौतिक पारस्परिक अन्तर्निर्भरता, नव–उपनिवेशवाद, आर्थिक साधनों का एक पक्षीय शोषण, बहुराष्ट्रीय निगमों की अन्यायपूर्ण भूमिका, WTO की अपूर्णता आदि तत्वों ने मिलकर नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग को सुदृढ़ बनाया है। आज विकासशील देश अपनी इस मांग को जोरदार रूप में उठा रहे हैं; लेकिन यह मांग एक मांग ही बना हुई है। इसे वास्तविकता बनाने में न जाने कितना समय लगेगा।

2.6 प्रमुख मुद्दे व धारणाएं

आज अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा में कई विषय तथा समस्याएं शामिल की गई हैं। इन समस्याओं का समाधान उत्तर दक्षिण वार्ताओं पर निर्भर करता है। यदि इन समस्याओं का उचित समाधान करने में विकासशील व विकसित देशों को सफलता मिल जाए तो विश्व में नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना होगी और सभी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध नए सिरे से स्थापित होने लगेंगे। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा के प्रमुख मुद्दे निम्नलिखित हैं–

2.6.1 वर्तमान विश्व अर्थव्यवस्था में संस्थागत परिवर्तन

आज विश्व अर्थव्यवस्था को संचालित करने वाली सभी संस्थाएं विकसित राष्ट्रों के हितों की पोषक हैं। आर्थिक संबंधों को संचालित व नियंत्रित करने वाले सभी नियम भी अन्यायपूर्ण हैं। जो आर्थिक विषमताओं में वृद्धि करने वाले हैं। इसलिए विकासशील देशों की यह बात उचित है कि विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाएं विकसित राष्ट्र के हितों में कार्य करती है। अतः इनका पुनर्गठन किया जाना चाहिए। GATT भी धनी तथा विकसित राष्ट्रों को लाभ पहुंचाने वाला है। उरूग्वे वार्ता भी विकसित राष्ट्रों के पक्ष में है। वर्तमान पेटेन्ट कानून व कॉपीराइट भी विकसित देशों की अर्थव्यवस्था में लाभकारी स्थिति पैदा करते हैं। इसलिए विश्व आर्थिक संस्थाओं व उनकी कार्यप्रणाली में परिवर्तन करना आवश्यक है तथा न्यायपूर्ण अर्थव्यवस्था पर आधारित न्यायपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों का जन्म हो।

2.6.2 अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व व्यापार में संरक्षणवाद की नीति का अन्त

वर्तमान विश्व अर्थव्यवस्था विकसित राष्ट्रों की संरक्षणवादी व्यापार नीति पर आधारित है। इस नीति के तहत विकसित देश विकासशील देशों के व्यापार पर मनमाने अंकुश लगाकर अप्रत्यक्ष रूप से उनके व्यापार को हानि पहुंचा रहे हैं। इन देशों ने GATT के नियमों को भी ताक पर रख दिया है और अपनी संरक्षणवादी नीति को ही सबल आधार प्रदान करने में लगे हुए हैं। इन विकसित देशों ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विकासशील देशों का कोटा पहले से भी कम कर दिया है। जूता व कपड़ा उद्योग पर अनेक प्रतिबंध से परिपूर्ण शर्ते थोपकर इन देशों ने विकासशील देशों के व्यापार को क्षति पहुंचाई है। कठोर प्रतिबंधों के कारण इनका निर्यात लगातार घट रहा है और भुगतान संतुलन का घाटा लगातार बढ़ रहा है। आज भी इंग्लैंड तथा ब्रिटेन जैसे देश विलासिता की वस्तुओं तथा लोहे जैसी आवश्यक धातु से निर्मित सामान पर भी सीमित कोटा प्रणाली लगाने पर विचार कर रहे हैं। इन संरक्षणवादी नीतियों के कारण विकासशील देश लगातार हानि उठा रहे हैं। उनका आयात तो बढ़ रहा है, लेकिन निर्यात घट रहा है। ऐसी स्थिति में उनकी अर्थव्यवस्थाएं बर्बादी के कगार पर पहुंचने वाली हैं। अतः विकासशील देशों की यह मांग सही है कि संरक्षणवादी व्यापार नीति पर प्रतिबंध लगाया जाए और नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लक्ष्य की ओर बढ़ा जाए।

2.6.3 बहुराष्ट्रीय निगमों की लज्जास्पद भूमिका पर नियंत्रण

आधुनिक विश्व अर्थव्यवस्था में बहुराष्ट्रीय निगम एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इनका सभी अंतर्राष्ट्रीय पेटेन्टों पर नियंत्रण है। अपने तकनीकी ज्ञान के बल पर इनका समस्त विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था व आर्थिक नीतियों पर प्रभुत्व है। अपने तकनीकी ज्ञान के बल पर इनका समस्त विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था व आर्थिक नीतियों पर प्रभुत्व है। तकनीक को जब ये तीसरी दुनिया के देशों को बेचते हैं तो इनका लाभ कई गुणा बढ़ जाता है। इसलिए विकासशील देशों को आर्थिक साधनों की कमी के चलते भारी कीमत पर तकनीक खरीदनी पड़ती है। साथ में ही उन देशों को बहुराष्ट्रीय निगमों के अनुचित हस्तक्षेप को भी सहना पड़ता है। इनकी लज्जास्पद भूमिका के कारण विकासशील देशों को भारी हानि उठानी पड़ती है। इन नव–उपनिवेशीय नियंत्रण के कारण विकसित तथा

विकासशील देशों में आर्थिक असमानता ज्यादा बढ़ जाती है। विकासशील देशों में ये निगम वहां की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यप्रणाली को भी प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं ताकि उनका उपनिवेशीय नियंत्रण और मजबूत बन जाए। कई बार तो ये विकासशील देशों में तख्ता पलट जैसी घटनाओं को सफलतापूर्वक अंजाम दे देते हैं। इसलिए वर्तमान विश्व अर्थव्यवस्था में इनकी भेदभावपूर्ण भूमिका के कारण, विकासशील देश इनके लिए एक आदर्श आचार संहिता के निर्माण पर जोर देते हैं ताकि इनकी भूमिका स्वस्थ आर्थिक सम्बन्धों का निर्माण करने में मददगार सिद्ध हो और नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की दिशा में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों का प्रवाह हो।

2.6.4 वस्तु उत्पादकों के हितों का संरक्षण

आधुनिक युग सार्वभौमिक पारस्परिक आत्मनिर्भरता का युग है। इसमें विकासशील देशों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परन्तु उनकी भूमिका को विकसित देशों की तुलना में कम आंका जाता है। अपने हितों की सुरक्षा के लिए उन्हें विकसित देशों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। उनकी उत्पादित वस्तुओं को विकसित देशों की संरक्षणवादी व्यापारिक नीति तथा खुली प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है। इसमें उनको असफलता का मुंह देखना पड़ता है। इससे विकासशील देशों को कम निर्यात से ही संतुष्ट होना पड़ता है। विकसित देशों द्वारा कच्चे माल व तैयार माल की कीमतों व कीतम घटाने–बढ़ाने की प्रवृति के कारण भी उन्हें भारी हानि उठानी पड़ती है। इससे तृतीय विश्व क देशों में निर्धनता का प्रतिशत लगातार बढ़ रहा है। इसलिए विकासशील देशों की यह मांग है कि वर्तमान संरक्षणवादी नीति को समाप्त करके न्यायपूर्ण नीति बनाई जाए। कच्चे माल की कीमतें स्थित रखी जाएं ताकि विकासशील देशों को आर्थिक नुकसान न उठाना पड़े। कीमतों को घटाने या बढ़ाने की नीति अंतर्राष्ट्रीय समझौते के तहत ही निर्धारित की जाए ताकि विकासशील देशों को अधिक नुकसान न हो। इससे विकासशील देशों का आर्थिक नुकसान कम होगा। व्यापार में उनकी भागेदारी निर्यातक के रूप में बढ़ेगी और असमान आर्थिक सम्बन्धों में बदलाव आकर नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना हो सकेगी।

2.6.5 विकासशील देशों की आत्मनिर्भरता में वृद्धि

आधुनिक युग में सभी विकासशील राष्ट्रों का ध्येय आत्मनिर्भरता को प्राप्त करना है। आधुनिक विश्व अर्थव्यवस्था उनकी आत्मनिर्भरता को पारस्परिक निर्भरता में बदलने वाली है। वर्तमान विश्व अर्थव्यवस्था में विकासशील देशों को आत्मनिर्भर बनाने जैसे तत्वों का सर्वथा अभाव है। विकासशील देशों में निर्धनता, बेरोजगारी, भुखमरी जैसी समस्याओं का ढेर है। अब विकासशील देश इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ एकजुट हो चुके हैं। वे चाहते हैं कि विकासशील देश पारस्परिक सहयोग की भावना के आधार पर ही अपनी आत्मनिर्भरता में वृद्धि करें। यद्यपि वे यह भी जानते हैं कि विकसित राष्ट्रों पर उनकी निर्भरता आसानी से कम नहीं हो सकती। फिर भी वे पारस्परिक निर्भरता के स्थान पर आत्मनिर्भरता के प्रयास करने की दिशा में कृतसंकल्प हैं। इसी से नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विकास होगा और विकासशील देशों का यह आत्मनिर्भरता का लक्ष्य अवश्य ही प्राप्त होगा।

2.6.6 तकनीकी आदान–प्रदान

तकनीकी ज्ञान आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण साधन होता है। विकासशील देशों में आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण उनके पास उन्नत तकनीक का न होना हैं ये देश कच्चे माल को तैयार माल में बदल तो देते हैं, लेकिन विकसित देशों में उत्पादन वस्तुओं की तुलना में कम गुणवत्ता के कारण उनका माल अंतर्राष्ट्रीय बाजार स्पर्धा में पिछड़ जाता है। इसलिए विकासशील देशों का आर्थिक विकास उन्नत तकनीकी विकास पर ही निर्भर है। यह तकनीक विकसित देशों के पास है। विकसित देश बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से इसे भारी कीमतों पर बेचते हैं। इससे असमान आर्थिक संतुलन पैदा होता है। विकासशील राष्ट्रों की यही मांग है कि तकनीकी हस्तांतरण को सरल बनाया जाए ताकि कम कीमत पर इसे विकासशील देश भी खरीद सकें। लेकिन विकसित देश इस मांग को

अनुचित बताते हैं। इसलिए नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का उद्देश्य भी तकनीकी आदान–प्रदान को सरल बनाकर उसको विकासशील देशों तक कम कीमत पर पहुंचाना है। इसी से (NIEO) की स्थापना का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

2.6.7 पूंजी स्त्रोतों का हस्तांतरण

आज विश्व के विकसित देशों का अधिकतर पूंजी स्त्रोतों पर कब्जा है। नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख ध्येय इन पूंजी स्त्रोतों का विकेन्द्रीकरण करके इनका लाभ विकासशील देशों तक भी पहुंचाना है। पूंजी साधनों के उचित प्रयोग से विकसित राष्ट्रों के साथ–साथ विकासशील देशों को भी लाभ होगा। नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना से महत्वपूर्ण पूंजी साधनों का उपयोगी कार्यो में लगाकर ज्ञान का भी आदान प्रदान किया जा सकेगा। इसके लिए तृतीय विश्व के देशों के सभी ऋणों को समाप्त करना आवश्यक है। इसके साथ–साथ विकसित राष्ट्रों से कुल उत्पादन से प्राप्त आय का 0.7 प्रतिशत भाग विकासशील राष्ट्रों को अनुदान के रूप में मिलना भी जरूरी है। इससे तृतीय विश्व के देशों की आर्थिक समस्याओं का समाधान होगा, उनकी आर्थिक निर्भरता में कमी आएगी तथा उनका आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। इससे नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का मार्ग तैयार होगा और भेदभावपूर्ण वर्तमान आर्थिक सम्बन्धों का काला अध्याय समाप्त हो जाएगा।

2.6.8 ब्रेटनवुड व्यवस्था में पूर्ण संशोधन

वर्तमान विश्व व्यापार व्यवस्था में विकासशील देशों की भागेदारी बहुत ही कम है। निर्यात मंडियों पर विकसित देशों का ही कब्जा है। विकसित और विकासशील देशों के निर्यात में भारी अन्तर है। GATT की तरह यह भी धनी राष्ट्रों के हितों का ही पोषण कर रही है। इसलिए ब्रेटनवुड व्यवस्था पर आधारित खुली प्रतियोगिता को रोकना आवश्यक है। ताकि यह विकासशील देशों के हितों के अनुकूल कार्य करने लगे। आज विकासशील देशों की यह मांग है कि वर्तमान विश्व व्यापार व्यवस्था (ब्रेटनवुड व्यवस्था) को पूरी तरह समाप्त किया जाए और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के नियमों को विकासशील देशों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया जाए ताकि नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हो सके।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्तमान अर्थव्यवस्था की पुनःसंरचना, ब्रेटनवुड व्यवस्था में पूर्ण संशोधन, पुराने ऋणों की समाप्ति, विश्व व्यापार में तृतीय विश्व के देशों को अधिक हिस्सा प्रदान करना, तकनीकी हस्तांतरण, अंतर्राष्ट्रीय निर्णयों में उचित भागेदारी, कृषि तथा उद्योग के लिए अधिक आर्थिक सहायता आदि की व्यवस्था द्वारा नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। इसके लिए पारस्परिक अन्तर्निर्भरता की बजाय आत्मनिर्भरता की अधिक आवश्यक है। आज तृतीय विश्व के देशों में आपसी सहयोग की प्रवृति जन्म ले रही है। लम्बे समय से G-77, G-15 तथा दक्षिण–दक्षिण सहयोग आदि प्रयासों से नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की दिशा में ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। लेकिन विकासशील देशों में आपसी सहयोग की भावना की कमी के चलते दक्षिण–दक्षिण सहयोग के कार्यक्रम को भी भारी धक्का लग रहा है। ऐसी परिस्थितियों में NIEO की कल्पना करना अप्रासंगिक होगा। यदि NIEO की स्थापना का मार्ग तैयार करना है तो सबसे पहले विकासशील देशों में आपसी सहयोग की प्रवृति बढ़ानी होगी और उत्तर–दक्षिण संवाद को बनाए रखने के लिए विकसित देशों पर दबाव बनाना होगा ताकि वर्तमान अन्यायपूर्ण विश्व अर्थव्यवस्था को समाप्त करने की दिशा में विकासशील देशों द्वारा किए जाने वाले प्रयासों को विकसित राष्ट्रों का भी भरपूर सहयोग प्राप्त हो सके।

2.7 सारांश

इस अध्याय में 1970 के दशक में विकासशील देशों द्वारा नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग का विस्तृत विवरण प्रदान किया है। इस व्यवस्था को मांग के कारणों का अति स्पष्ट वर्णन के बाद विभिन्न सिद्धान्तों पर

आधारित इस व्यवस्था की स्थापना की पैरवी की गई है। इस मांग से जुडे प्रमुख मुद्दों एवं धारणाओं का भी आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है। 1990 के दशक में किस प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने इसे गौण स्थिति में पहुंचा दिया इसकी भी चर्चा अन्त में की गई है।

2.8 प्रश्नावली

1. नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (नीयो) से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी मांग के कारणों की चर्चा कीजिए।
2. वैश्वीकरण प्रक्रिया ने नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग को समाप्त कर दिया है। टिप्पणी करें?
3. 1970 से 1990 तक दो दशकों में नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग हेतु किए गए प्रयासों का वर्णन कीजिए।

2.9 पाठन सामग्री

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–3

उत्तर–दक्षिण संवाद

अध्याय का ढ़ांचा

3.1 प्रस्तावना

3.1.1 अध्याय के उद्देश्य

3.2 उत्तर–दक्षिण संवाद से अभिप्राय

3.3 ऐतिहासिक पृष्टभूमि

3.4 उत्तर–दक्षिण संवाद के प्रयास

3.4.1 1975 की पेरिस वार्ता

3.4.2 ब्रांट आयोग

3.4.3 संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा का विशेष पत्र

3.4.4 कानकुन सम्मेलन

3.4.5 न्यूयॉर्क सम्मेलन

3.4.6 गैट समझौता तथा विश्व व्यापार संगठन

3.4.7 पृथ्वी सम्मेलन

3.4.7.1 जनसंख्या

3.4.7.2 तकनीकी हस्तांतरण

3.4.7.3 ग्रीन हाऊस प्रभाव

3.4.7.4 पर्यावरण विनाश

3.4.7.5 वन

3.4.7.6 धन

3.5 सारांश

3.6 प्रश्नावली

3.7 पाठन सामग्री

3.1 प्रस्तावना

समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था तृतीय विश्व के हितों के अनुकूल नहीं है। यह विकसित देशों के ही हितों की पोषण है।

इससे अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में असमान संतुलन की स्थिति बनी हुई है। इसलिए विकासशील देश (तृतीय विश्व) वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को समाप्त करके नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की पुरजोर मांग कर रहे हैं। लेकिन विकसित देश उनकी इस बात को स्वीकार करने से कतरा रहे हैं। वे वर्तमान विश्व व्यवस्था में किसी भी ऐसे परिवर्तन की सम्भावना से इंकार करते हैं जो उनके आर्थिक हितों को हानि पहुंचाने वाला हो। ऐसी स्थिति में विकासशील देश दो उपायों का सहारा लेते हैं – प्रथम तो वे उत्तर–दक्षिण संवाद को प्राथमिकता देते हैं, दूसरा वे दक्षिण–दक्षिण सहयोग की बात करते हैं।

3.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का मूल उद्देश्य उत्तर (विकसित) एवं दक्षिण (विकासशील) देशों के मध्य उस संवाद से अवजात कराना है जिसके द्वारा दक्षिण के राज्य एक ऐसी नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग कर रहे है जो दक्षिण के देशों के लिए भी अनुकूल हो। इस अध्याय में उन सब प्रयासों का वर्णन है जिसके माध्यम से ये देश अपनी सौदेबाजी की क्षमता के आधार पर उत्तर के देशों को मनाने का प्रयास कर रहे है। यहाँ उन सभी रियायतों का भी वर्णन है जो दक्षिण के राज्य उत्तर के राज्यों से चाहते हैं। अतः इन दोनों का संवाद एक गैर–समानता वाली अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को समाप्त कर एक समानता वाली अर्थव्यवस्था स्थापना हेतु प्रयासरत हैं।

3.2 उत्तर–दक्षिण संवाद से अभिप्राय

भौगोलिक आधार पर समस्त संसार दो गोलार्द्धों – उत्तरी गोलार्द्ध तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में विभाजित है। उत्तरी गोलार्द्ध में अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य यूरोप क विकसित व धनी देश आते हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में लैटिन अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया के अविकसित, पिछड़े हुए, गरीब तथा विकासशील देश शामिल हैं। राजनीतिक शब्दकोष में विकसित देशों के लिए उत्तर या विकासशील देशों के लिए दक्षिण शब्द का प्रयोग किया जाता है। उत्तर से तात्पर्य पूंजीवादी विचारधारा रखने वाले विकसित औद्योगिक देशों से है जहां पर तकनीकी विकास व उत्पादन अपनी चरम सीमा पर है। वहा पर प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है। ये देश समस्त विश्व के 70 प्रतिशत पूंजी साधनों पर अपना कब्जा किए हुए हैं। इसके विपरीत दक्षिण से तात्पर्य उन विकासशील देशों से है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद स्वतन्त्र हुए हैं। उनमें प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। इन देशों में तरह–तरह की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समस्याएं हैं। पूंजी की कमी, प्रति व्यक्ति कम आय, जनसंख्या विस्फोट, निर्धनता, बेजोजगारी, भुखमरी आदि दक्षिण के विकासशील देशों की प्रमुख समस्याएं हैं। विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएं उद्योग प्रधान हैं, जबकि विकासशील देशों की कृषि प्रधान है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन आदि विकसित देश उत्तर की श्रेणी में हैं, जबकि भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बर्मा, नेपाल भूटान, अफगानिस्तान तथा अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के देश दक्षिण की श्रेणी में आते हैं। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उत्तर के विकसित तथा दक्षिण के विकासशील देशों के बीच नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था या अन्य बातों के बारे में किए गए वार्तालाप को उत्तर–दक्षिण संवाद का नाम दिया जाता है।

इस प्रकार उत्तर–दक्षिण संवाद नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की दिशा में उत्तर तथा दक्षिण के देशों के बीच जारी रहने वाले व्यक्तिगत सम्पर्कों का कार्यक्रम है। इसके लिए दोनों में परस्पर होने वाले प्रत्यक्ष वाद–विवाद को शामिल किया जाता है क्योंकि संवाद से तात्पर्य आपसी विचार–विमर्श ही होता है।

3.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

काफी लम्बे समय उत्तर के विकसित देशों का दक्षिण के विकासशील देशों पर साम्राज्यवादी नियंत्रण रहने के कारण विकासशील देशों में आर्थिक पिछड़ापन बढ़ गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के अधिकतर गुलाम देश उत्तर की साम्राज्यवादी ताकतों के पंजों से मुक्त होने लग गए। लेकिन अपने साधनों का

विकसित देशों द्वारा लंबे समय तक दुरूपयोग करते रहने के कारण इस समय तक वे आर्थिक पिछड़ेपन के शिकार हो चुके थे। उन्होंने पाया कि विश्व अर्थव्यवस्था का झुकाव उनके हितों के खिलाफ है। विश्व के 30 प्रतिशत जनसंख्या वाले विकसित देश उनकी 70 प्रतिशत जनसंख्या पर अपना नव–उपनिवेशीय नियंत्रण कायम किए हुए हैं तो उनके लिए यह चिन्ता का विषय बन गया। उन्होंने महसूस किया कि उनकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 700 डॉलर है, जबकि विकसित देशों में यह 10000 डॉलर है। उन्हें विकसित देशों से मिलने वाली आर्थिक सहायता उनको नए प्रकार के शोषण का शिकार बना रही है। उनका विश्व व्यापार में हिस्सा बहुत ही कम हैं उनका निर्यात लगातार गिर रहा हैं विदेशी व्यापार की शर्ते उनके हितों के विपरीत हैं। उन पर ऋणों का बोध लगातार बढ़ रहा है। 1984 की विश्व बैंक रिपोर्ट स्वयं इस बात को इंगित करती है कि विकासशील देश (दक्षिण) लगातार ऋण के भार से दबते जा रहे हैं 1950 में विश्व व्यापार में विकासशील देशों की भागेदारी 20 प्रतिशत थी जो 1975 तक 11 प्रतिशत रह गई। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा अन्य वित्तीय संस्थान प्रतिवर्ष विकासशील देशों को जितनी मदद देते हैं; उससे अधिक वे ब्याज के रूप में वसूल करते हैं। विश्व विकास आन्दोलन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1992 में विश्व बैंक ने भारत, बंगलादेश व पाकिस्तान को 3 अरब डॉलर का ऋण दिया। ब्याज के भुगतान के बाद इन्हें 88 करोड़ 50 लाख डॉलर ही प्राप्त हुए। इससे विश्व मौद्रिक संस्थाओं की कारगुजारी स्पष्ट हो जाती है कि ये संस्थाएं विकासशील देशों के हितों के अनुकूल नहीं है।

1964 से 1967 तक व्यापार एवं प्रशुल्क पर हुए सामान्य समझौते (GATT) के तहत विकसित तथा विकासशील देशों में निर्यात व्यापार संबंधी कुछ विचार विमर्श हुआ लेकिन उसका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला, 1970 के दशक के प्रारम्भ में ही विकासशील देश आर्थिक सम्बन्धों के लोकतन्त्रीकरण पर जोर देने लगे। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1974 में अपने विशेष अधिवेशन में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) हेतु घोषणा एवं कार्यक्रम का मसौदा पारित किया। तब से अंकटाड, गुटनिरपेक्ष सम्मेलन आदि के माध्यम से विश्व अर्थव्यवस्था के ढांचे में परिवर्तन की मांग बलवती होने लगी। उत्तर के विकसित देशों ने इस बात को महसूस किया कि विकासशील देशों की उचित मांगों की अनदेखी करना गलत है। इसलिए उन्होंने आपसी विचार विमर्श की प्रक्रिया आरम्भ की जिसे उत्तर दक्षिण संवाद कहा जाता है। उत्तर–दक्षिण संवाद को विकसित करने वाली घटनाओं ने विकासशील देशों को नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग में वृद्धि करने के प्रयासों को और तेज कर दिया। संयुक्त राष्ट्र महासभा, अंकटाड, ब्रांट आयोग हटाना है, आदि के प्रयासें ने नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए उत्तर–दक्षिण संवाद पर बल दिया।

3.4 उत्तर दक्षिण संवाद के प्रयास

उत्तर–दक्षिण संवाद के विकास के लिए किए गये प्रयत्न निम्नलिखित है–

3.4.1 1975 की पेरिस वार्ता

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की घोषणा के बाद यह प्रथम प्रयास था जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग में वृद्धि करना था, दिसम्बर, 1975 में विकसित तथा विकासशील देश अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग में वृद्धि करना था, दिसम्बर, 1975 में विकसित तथा विकासशील देश अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के मुद्दे पर एकत्रित हुए और इसमें 8 विकसित तथा 19 विकासशील देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन के आयोजन का श्रेय अमरीकी विदेश सचिव हेनरी किसिंजार को जाता है इस सम्मेलन को 'अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। यह सम्मेलन 18 महीने तक चला और 1977 में समाप्त हुआ। इसमें भाग लेने वाले देशों ने एक अंतर्राष्ट्रीय सचिवालय तथा ऊर्जा कच्चे माल, विकास, वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में चार आयोग स्थापित करने पर सहमति जताई। विकसित राष्ट्रों ने यह भी स्वीकार किया कि ऊर्जा की समस्या तथा आर्थिक विकास की समस्या के बीच गहरा रिश्ता है। इसमें उत्तर के विकसित देशों ने दक्षिण के निर्धन देशों के लिए कुछ

सहायता कार्यक्रमों की घोषणा की जिनमें गरीब देशों का बढ़ता तेल घाटा तथा जिस मूल्यों को स्थिर करने के लिए गरीब देशों की सहायता के लिए एक विशेष कोष की स्थापना की बात स्वीकारी गई। लेकिन इस सहायता के बदले विकसित देशों ने 1973 की तेज संकट की मार को फिर से न झेलने के लिए विकासशील देशों में स्थिर तेल मूल्यों व सप्लाई की गारंटी की मांग रखी। इस असंगत मांग ने इस वार्ता को विफल बना दिया और NIEO की मांग को गहरा आघात पहुंचा।

3.4.2 ब्रांट आयोग

दिसम्बर 1975 की पेरिस के असफल रहने पर विश्व बैंक के तत्कालीन–अध्यक्ष रॉबर्ट मैकनामारा के सुझाव पर अंतर्राष्ट्रीय विकास मुद्दों से निपटने के लिए 1977 में एक गैर सरकारी स्वतन्त्र आयोग स्थापित किया गया जिसे ब्रांट आयोग के नाम से जाना जाता है। इस आयोग के अध्यक्ष पश्चिमी जर्मनी के भूतपूर्व चांसलर विलीब्रान्ट थे। इसमें समस्त विश्व के देशों से सदस्य थे। भारत के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डॉ. एल.के. झा भी इस आयोग में थे। इसकी प्रथम बैठक दिसम्बर 1977 में बोन में हुई। इस आयोग ने सामाजिक विकास समस्याओं के बारे में अपनी दो रिपोर्ट– 'नॉर्थ–साउथ : ए प्रोग्राम फॉर सर्वाइवल' तथा – कॉमन क्राइसिस' के नाम से भी प्रसिद्ध है। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि विश्व शान्ति व सहयोग के लिए उत्तर–दक्षिण में पारस्परिक निर्भरता आवश्यक है। इस आयोग ने विश्व नेताओं की एक औपचारिक बैठक बुलाने का सुझाव दिया ताकि विकसित व विकासशील देशों के बीच अन्तर के प्रमुख विषयों – व्यापार, सहायता, सुरक्षा, तकनीकी, आदान–प्रदान विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का उदारीकरण आदि पर वार्तालाप हो सके और नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की दिशा में ठोस कदम उठाए जा सकें।

इस आयोग ने उत्तर–दक्षिण संवाद के विकास के लिए – वस्तु व्यापार, विकासशील देशों के लिए ऋण, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा सुधार, तकनीकी हस्तांतरण, बहुर्राष्ट्रीय निगमों का सुधार, समुद्री कानून, बहुउद्देश्यीय व्यापार, आदि मुद्दों पर अपने सुझाव दिए। उत्तर दक्षिण संवाद की दिशा में ब्रांट आयोग एक महत्वपूर्ण प्रयास था।

3.4.3 संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा का विशेष सत्र

महासभा ने 25 अगस्त, 1980 को विकसित व विकासशील देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों के बारे में विचार करने के लिए एक विशेष सत्र बुलाया। इसमें विकासशील देशों ने अधिक आर्थिक सहायता, अधिक स्वतन्त्र व्यापार (संरक्षणवाद से रहित) कच्चे माल की स्थिर कीमतें आदि की मांग विकसित देशों के सामने रखी। लेकिन विकसित देशों ने इसे अस्वीकृत कर दिया। केवल इस बैठक में 9 महीने बाद होने वाली व्यापक समझौता वार्ता के लिए आधार प्रस्तुत कर दिया, अतः उत्तर–दक्षिण संवाद का यह प्रयास विकसित देशों की नकारात्मक भूमिका के कारण असफल रहा।

3.4.4 कानकुन सम्मेलन

यह सम्मेलन मैक्सिको के कानकुन शहर में अक्तूबर, 1981 में हुआ। इसमें 14 विकासशील तथा 8 विकसित देशों (22 देश) ने भाग लिया। इसका उद्देश्य उत्तर–दक्षिण संवाद की प्रगति को जाचना था। इसमें 23 देशों को निमंत्रण भेजे गए थे, लेकिन सोवियत संघ ने इसमें हिस्सा नहीं लिया, अमेरिका के कारण क्यूबा को इसमें नहीं बुलाया गया। प्रथम शिखर वार्ता को सम्बोधित करते हुए अमेरिका के राष्ट्रपति रीगन ने कहा कि अमेरिका व्यापक समझौता वार्ता में शामिल हो सकता है यदि – उनमें नई अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के निर्माण की बात न हो, वर्तमान अंतराष्ट्रीय संस्थाओं की कार्य प्रणाली सभी को मान्य हो, उनका उद्देश्य अधिक अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास की प्राप्ति हो व समझौता वार्ताएं सहयोगपूर्ण वातावरण में हों। फ्रांस तथा कनाडा ने रीगन की इन शर्तो का खुलकर समर्थन किया। ब्रिटेन, अमरीका तथा जर्मनी ने यह विचार भी रखा कि विश्व अर्थव्यवस्था की पुनः संरचना सम्बन्धी विचार इनसे

संबंधित अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों में ही हों।

विकासशील देशों ने इस बात पर जोर दिया कि विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के ढांचे में व्यापक परिवर्तन करके उन्हें अधिक प्रासंगिक बनाया जाए। लेकिन विकसित देशों ने इसका विरोध किया और कहा कि इसके बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) के ही निर्णय को माना जाए। अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों ने इसका विरोध इसलिए किया कि वर्तमान व्यवस्था में विश्व बैंक का अध्यक्ष हमेशा अमेरिकी नागरिक तथा मुद्रा कोष का डायरेक्टर पश्चिमी यूरोप का ही नागरिक होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ में ये देश अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग करके वर्तमान व्यवस्था को बनाए रखने में सफल हो सकते हैं। इसलिए इन्होंने (UNO) में ही निर्णय की बात उठाई। इस सम्मेलन में खाद्यान्न समस्या, भुखमरी, कृषि विकास, व्यापार समस्या, ऊर्जा संकट आदि में भी विस्तारपूर्वक विचार किया विकासशील देशों की तरफ से निर्यात सम्बन्धी समस्याओं को लेकर तैयार किया गया पांच सूत्री कार्यक्रम सम्मेलन की कार्यवाही में शामिल तो कर लिया गया लेकिन विकसित देशों ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। ये पांच सूत्र हैं – 1 जिन्सों के आयात–निर्यात संबंधी समझौते नए सिरे से हों, 2. जिन्सों के भाव स्थिर रखने के लिए अंकटाड के तत्वावधान में बताए जाने वाले सांझा कोष की प्रगति को बढ़ाया जाए। 3. विकासशील देशों के निर्यात पर प्रतिबंधों को समाप्त किया जाए, 4. रेशे सम्बन्धी समझौते का नवीनीकरण हो, 5. विकासशील देशों के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने की प्रवृति को रोका जाए। इस सम्मेलन के अन्त में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना व उत्तर–दक्षिण संवाद को आगे बढ़ाने पर कोई सहमति नहीं हुई। विकसित देशों के नकारात्मक व्यवहार के कारण यह सम्मेलन असफल रहा।

3.4.5 न्यूयॉर्क सम्मेलन

इस सम्मेलन का आयोजन अमेरिका के न्यूयॉर्क शहर में हुआ। अंकटाड के तत्वावधान में 1983 में आयोजित इस सम्मेलन में विश्व के अनेक नेता एकत्रित हुए। भूतपूर्व दिवंगत भारतीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस सम्मेलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसमें उत्तर–दक्षिण संवाद को विकसित करने पर बल दिया गया। G-7 तथा अमेरिका की हठधर्मिता के कारण इस सम्मेलन में कोई ठोस निर्णय नहीं हो सका और अन्त में यह भी विफल हो गया।

3.4.6 गैट समझौता तथा विश्व व्यापार संगठन

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था तटकर और व्यापार से सम्बन्धित सामान्य समझौते द्वारा संचालित होती चली आ रही है। इस सामान्य समझौते को GATT कहा जाता है। इसका अर्थ है – व्यापार और प्रशुल्क पर सामान्य समझौता। इस समझौते की स्थापना का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में आने वाली बाधाओं को दूर करके लाभकारी लक्ष्यों को प्राप्त करना था। 1986 तक इसके 8 सम्मेलन हुए। आठवां सम्मेलन 20 सितम्बर, 1986 को उरूग्वे (अमेरिका) में हुआ जिसमें 100 देशों ने भाग लिया। उरूग्वे सम्मेलन में आगामी 4 वर्ष तक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पर GATT की प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर विचार हुआ। लेकिन 7 वर्ष बाद भी GATT अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था पर आम सहमति पर आधारित रिपोर्ट नहीं दे सका। उरूग्वे सम्मेलन में विभिन्न वार्ताओं का दौर चला। इसका आठवां दौर उरूग्वे के शहर पुन्ता डेल इस्ते में शुरू हुआ। इसमें परम्परागत वस्तु व्यापार निगम के बनते रहे। कृषि को इससे बाहर रखा गया। उरूग्वे दौर की वर्तमान वार्ता में कृषि को भी शामिल कर लिया गया। इसमें चार नए क्षेत्रों – 1. व्यापार से संबंधित निवेश उपाय, 2. बौद्धिक सम्पदा अधिकार के पहलुओं से सम्बन्धित व्यापार, 3. सेवाओं में व्यापार तथा 4. कृषि को शामिल किया गया। गैट वार्ता की सूची में ये क्षेत्र विकसित देशों की स्वीकृति से ही शामिल किए गए। विकसित देशों का तर्क था कि व्यापार से संबंधित निवेश उपायों को वार्ता सूची में शामिल करना चाहिए क्योंकि विकासशील देश विदेशी निवेश को नियंत्रित करने वाली नीतियां बनाकर विदेशी कम्पनियों के स्वतन्त्र व्यापार में बाधा पहुंचाते हैं। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों, विशेषकर

पेटेण्ट, कॉपीराइट तथ ट्रेडमार्क के अपर्याप्त संरक्षण के कारण चोरी का व्यापार बढ़ता है और वैद्य व्यापार को हानी पहुंचती है। विकासशील देशों ने विकसित देशों के इन तर्को का जोरदार खण्डन किया। 1990 तक उरूग्वे वार्ता किसी सर्वमान्य हल तक पहुंचने में असफल रही। 1991 में 108 सदस्यीय (GATT) के महानिदेशक आर्थर डुंकेल ने गैट के भावी स्वरूप पर 500 पृष्ठों की अपनी प्रस्ताव सूची पेश की। इन प्रस्तावों पर विचार करने के लिए 17 अप्रैल, 1992 तक का समय दिया गया।

विकासशील देशों ने डुंकेल प्रस्तावों का विरोध किया। क्योंकि इसमें कृषि सब्सिडी, बौद्धिक सम्पदा अधिकार (पेटेंट, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क), विदेशी निवेश उपायों तथा सेवाओं को भी शामिल करके विकासशील देशों की मांगों और आवश्यकताओं की अनदेखी की गई और विकसित देशों के ही हितों का ध्यान रखा गया। इसमें सबसे अधिक विरोध पेटेन्ट अधिकारों के बारे में था। कृषि क्षेत्र में इसके लागू होने पर विकासशील देशों को कृषि तकनीक विकसित देशो से खरीदने पर भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। इस तरह डुंकेल प्रस्तावों के माध्यम से (GATT) द्वारा विकासशील देशों पर आकर्षित किया। लेकिन उनके विरोध का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और (GATT) में विकसित औद्योगिक देशों का ही प्रभुत्व बना रहा। GATT का पुराना रूप उस समय अप्रासंगिक हो गया जब 15 दिसम्बर, 1993 को 117 सदस्य देशों ने सर्वसम्मति से नए GATT को स्वीकृति प्रदान कर दी। यह समझौता 1995 में लागू हुआ और इसी के तहत विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई।

आज विश्व व्यापार संगठन (नया गैट समझौता) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से संबंधित 28 समझौते को लागू करता है जो उरूग्वे दौर की वार्ता में शामिल थे। यह संगठन पुराने गैट से अधिक व्यापक है। यह बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली को संस्थागत व वैधानिक आधार प्रदान करता है। यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर अपनी सजग दृष्टि रखता है। इसका प्रत्येक सम्मेलन 2 वर्ष के अन्तराल पर होता है। इसका प्रथम सम्मेलन सिंगापुर में हुआ और चौथा सम्मेलन नवम्बर 2001 में दोहा (कतर) में हुआ। तृतीया सम्मेलन सिएटल में 1999 में हुआ, जिसमें विकासशील देशों ने अमेरिका के श्रम मानकों का विरोध किया। अमेरिका श्रम मानकों पर इसलिए जोर दे रहा था ताकि विकासशील देशों ने बने सस्ते माल से प्रतिस्पर्धा में विकसित देशों को बचाया जा सके। 75 विकासशील देशों ने प्रथम बार विश्व व्यापार संगठन को ज्ञापन दिए। विकासशील देशों ने विकसित देशों के ही हितों को हानि पहुंचाई जा रही है। दोहा शिखर सम्मेलन 2005 तक अपने विकास लक्ष्य को प्राप्त करेगा। इस सम्मेलन में भारत व अन्य विकासशील देशों ने जन स्वास्थ्य संबंधी दवाईयों के उत्पादन एवं अधिग्रहण के मामले में बड़ी सफलता प्राप्त की। इससे एड्स, टी.बी., मलेरिया, आदि रोगों से लोगों को बचाने के लिए औषधियों के उत्पादन के मामले में WTO के पेटेन्ट संबंधी नियम रूकावट पैदा नहीं कर सकते। ये दवाईयां WTO के पेटेन्ट अधिकारों से बाहर है।

इस प्रकार पुराने गैट तथा नए गैट (WTO) के अंतर्गत विकसित तथा विकासशील देशों के विचार–विमर्श की प्रक्रिया उत्तर दक्षिण संवाद को आगे बढ़ाकर नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की दिशा में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों को प्रवाहित करने का एक प्रयास है।

3.4.7 पृथ्वी सम्मेलन

प्रथम पृथ्वी सम्मेलन जून 1992 में तथा दूसरा जून, 1997 में हुआ। इनका उद्देश्य पर्यावरण सुरक्षा के मुद्दों पर विचार करना था। प्रथम पृथ्वी सम्मेलन रियो दि जेनेरो (ब्राजील) में 3 से 14 जून, 1992 तक आयोजित हुआ। इसमें विकसित व विकासशील देशों ने पर्यावरण प्रदूषण के लिए एक दूसरे पर आरोप लगाए। विकसित देशों ने कहा कि विकासशील देशों की जनसंख्या विस्फोट की स्थिति के कारण व गरीबी के कारण यह हुआ है। ये देश घने जंगलों का सफाया कर रहे हैं और पर्यावरण संतुलन को खराब कर रहे है। इसके विपरीत विकासशील देशों ने कहा कि ऐसा विकसित देशों द्वारा विलासिता की वस्तुओं पर किया गया फिजूलखर्च है जिससे वातावरण में ग्रीन हाऊस प्रभाव में वृद्धि हुई है। इस सम्मेलन में उत्तर–दक्षिण (विकसित व विकासशील) देशों में निम्नलिखित मुद्दों पर मतभेद उभरे :–

3.4.7.1 जनसंख्या

उत्तर के विकसित देशों ने पर्यावरण के विनाश के लिए विकासशील देशों की अधिक जनसंख्या होने को उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने कहा कि अपना पेट भरने के लिए विकासशील देशों की गरीब जनता लगातार वनों को काट रही है। जबकि विकसित देश अपने को इसके लिए उत्तरदायी नहीं मानते। विकासशील देशों का कहना है कि अपनी विलासमयी प्रकृति के कारण विकसित देश पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। ये देश विश्व के 75 प्रतिशत साधनों का स्वयं प्रयोग करते हैं और 25 प्रतिशत ही शेष विश्व के लिए छोड़ते हैं।

3.4.7.2 तकनीकी हस्तांतरण

गरीब देशों का मानना है कि तकनीकी विकास अपने साथ कुछ दोष भी लेकर पैदा होता है। अत्यधिक तकनीकी विकास पर्यावरण के लिए खतरा भी पैदा करता है। यदि तकनीक का उचित प्रयोग व हस्तांतरण किया जाए तो इससे इसके दोषों से निजात दिलाई जा सकती है। गरीब देश तकनीकी का प्रयोग प्रदूषण कम करने तथा ऊर्जा क्षमता में सुधार करने के लिए प्रयोग करने के पक्ष में हैं। लेकिन विकसित देश इसे भारी कीमत लेकर बेचने के पक्ष में हैं। वे इसका हस्तांतरण नहीं करना चाहते। इसलिए दोनों में मतभेद पैदा होते हैं।

3.4.7.3 ग्रीन हाऊस प्रभाव

गरीब देशों का कहना है कि कार्बन डार्डऑक्साइड गैस को बढ़ा रहे हैं। इस सम्मेलन में विकसित देश ग्रीन हाउस प्रभाव को बढ़ाने वाली हानिकारक गैसों में 20 प्रतिशत कटौती करने के पक्ष में थे लेकिन विकासशील देश चाहते थे कि यह कटौती 50 प्रतिशत तक हो। इससे दोनों में मतभेद उभरकर सामने आए।

3.4.7.4 पर्यावरण विनाश

पर्यावरण को दूषित करने का जिम्मा दोनों का है। चाहे विकसित देश हो या विकासशील देश दोनों इसमें समान रूप से भागीदार हैं। लेकिन इस सम्मेलन में विकसित देशों ने विकासशील देशों को और विकासशील देशों ने विकसित देशों को पर्यावरण को प्रदूषित करने के लिए जिम्मेदार ठहराया, इसलिए विकसित देश चाहते हैं कि पर्यावरण को सुधारने का खर्च सांझे रूप में उठाए जाए लेकिन विकासशील राष्ट्र चाहते हैं कि इसका खर्च विकसित राष्ट्र ही उठाएं क्योंकि वे विश्व के 75 प्रतिशत संसाधनों का दोहन करते हैं।

3.4.7.5 वन

अमीर देशों का कहना है कि विकासशील देश अपनी आर्थिक मजबूरियाँ के कारण उष्णकटिबंधीय वनों को काट रहे हैं। लेकिन विकासशील देशों का कहना है कि वनों को काटना विकसित राष्ट्रों की ही आवश्यकताओं को पूरा करता है। यदि ऐसा किया जाए तो इससे राष्ट्रीय संप्रभुता के सिद्धान्त का भी उल्लंघन होगा।

3.4.7.6 धन

विकासशील देश चाहते हैं कि पर्यावरण सुधार के लिए किए जाने वाले उपायों का खर्च नई संस्था का निर्माण करके ही उठाया जाए। लेकिन विकसित राष्ट्र चाहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र एजेंसियां या विश्व बैंक इस कार्य को करें।

अनेक अन्तर्विरोधों के बावजूद भी इस सम्मेलन में आगामी शताब्दी के लिए विकास तथा पर्यावरण सुधार योजना के लिए धन जुटाने पर आम राय बन गई। विश्व में वनों के संरक्षण सम्बन्धी बातों पर भी इसमें सहमति हुई। अनेक देशों ने 0.7 प्रतिशत राष्ट्रीय उत्पाद का भाग विकास सहायता के रूप में देने का वचन दिया, इस सम्मेलन में विश्व जैव विविधता सन्धि भी हुई जो 29 दिसम्बर 1993 को लागू हो गई। लेकिन अमेरिका ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किए। इसके कारण पर्यावरण सुधार व वन संरक्षण के लिए किसी कोष की स्थापना नहीं हो सकी। लेकिन पर्यावरण की रक्षा के महत्व को अवश्य समझ लिया गया। जापान ने एक अरब डॉलर देकर इस

दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। जर्मनी ने भी प्रति वर्ष 40 करोड़ प्रतिवर्ष देने का वचन दिया। फ्रांस ने भी 0.6 प्रतिशत अपनी राष्ट्रीय आय से देने का वायदा किया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि विकासशील देशों के साथ–साथ कुछ विकसित देश भी पर्यावरण सुधार तथा वन संरक्षण में आगे जाए। इसमें पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए संयमपूर्ण जीवन शैली अपनाने का आग्रह किया गया। इस सम्मेलन में अमेरिका ने वनों को सार्वभौम सम्पदा मानने की बात कही तो भारत ने भी कच्चे तेल को सार्वभौम सम्पदा मानने की बात कही क्योंकि इसका उपयोग सम्पूर्ण मानव जाति के लिए होता है। इस प्रकार इस सम्मेलन में उत्तर–दक्षिण का अन्तर स्पष्ट तौर पर उभरकर सामने आया। इसमें पर्यावरण तकनीकी हस्तांतरण व अमीर देशों द्वारा विकासशील देशों को दी जाने वाली सहायता पर असहमति ही दिखाई दी।

इसके बाद 23 से 27 जून, 1997 को दूसरा पृथ्वी सम्मेलन अमेरिका के शहर न्यूयॉर्क में आयोजित हुआ। इस में 170 देशों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इसमें संसार में लगातार कम हो रहे वनों, उनकी नष्ट हो रही प्रजातियों तथा कम होता मत्स्य संसाधनों पर चिंता प्रकट की गई। विकासशील देशों ने विकसित देशों को पर्यावरण तकनीक के विकास के लिए पर्याप्त धन देने में उदारता बरतने का आग्रह किया। इस सम्मेलन में अमेरिका ने विकासशील देशों को पर्यावरण अनुकूल ऊर्जा स्त्रोतों के विकास के लिए एक अरब डॉलर की सहायता देने की घोषणा की, लेकिन ग्रीन हाउस प्रभाव में वृद्धि करने वाली गैसों को नियंत्रित करने के किसी मात्रात्मक लक्ष्य पर सहमति नहीं हो सकी। इस प्रकार यह सम्मेलन भी बिना किसी ठोस परिणाम के ही समाप्त हो गया।

इस प्रकार पेरिस वार्ता से प्रारम्भ होने वाला उत्तर–दक्षिण संवाद द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन (1997) तक पहुंच गया, लेकिन इसके ऐसे परिणाम नहीं निकले कि नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की स्थापना हो सके। इसमें पारस्परिक अंतरनिर्भरता के सिद्धान्त का रूख आत्मनिर्भरता की तरफ मुड़ता प्रतीत नहीं हुआ। न ही आज तक विकसित राष्ट्रों का नव–उपनिवेशवादी रवैया कम हुआ है। उनकी यह इच्छा अधिक प्रबल है कि विकासशील देशों पर अपनी साम्राज्यवादी पकड़ मजबूत बनाई जाए। डुंकेल प्रस्ताव नव–साम्राज्यवाद का ताजा उदाहरण है। अजा WTO तथा IMF जैसी मौद्रिक संस्थाएं भी विकसित देशों के ही हितों को पूरा करने में लगी हुई हैं। स्वयं विकासशील देश भी आपसी मतभेदों के शिकार हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विकासशील देश आवाज तो उठाते हैं; लेकिन उनकी आवाज विकसित देशों की कारगुजारी के आगे दब जाती है। आज अनेक विकासशील देश विकसित देशों द्वारा प्राप्त आर्थिक व तकनीकी सहायता पर ही जी रहे हैं। आज समय की मांग है कि उत्तर–दक्षिण संवाद को प्रभावी बनाने के लिए जापान जैसे विकसित देशों का सहयोग प्राप्त किया जाए। दक्षिण–दक्षिण सहयोग को आधार बनाकर विकसित राष्ट्रों पर अपनी निर्भरता को कम किया जाए और आत्म–निर्भरता को उपयोगी बनाया जाए। इससे उत्तर–दक्षिण संवाद पर आशानुकूल प्रभाव पड़ेगा और नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होगा।

3.5 सारांश

इस अध्याय में विकसित एवं विकासशील देशों के बीच नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हेतु प्रयास है। दक्षिण विकासशील राज्यों का मानना है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद स्थापित ब्रिटेनवुड व्यवस्था (आई.एम.एफ., वर्ल्ड बैंक तथा गैर/डब्ल्यू.टी.ओ.) उत्तर विकसित राज्यों के पक्ष में है। यह व्यवस्था न्योचित व समानता पर आधारित नहीं है। अतः एक न्योचित व समानता पर आधारित नई व्यवस्था की स्थापना अति अनिवार्य है। इसी सन्दर्भ में दक्षिण के देश विभिन्न प्रकार की गतिविधियों द्वारा इसमें प्रयासरत है। इस सन्दर्भ में अत्याधिक तर्को के बावजूद 1991 तक कुछ नहीं बदला। आज शीतयुद्धोत्तर युग में यह स्थिति ओर जटिल हो गई है तथा 1995 में डब्ल्यू.टी.ओ. की स्थापना ने ब्रिटेनवुड व्यवस्था को और मजबुत कर दिया है तथा नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के संघर्ष को समाप्त प्रायः स्थिति में पहुंचा दिया है।

3.6 प्रश्नावली

1. उत्तर–दक्षिण संवाद से आपका क्या अभिप्राय है? इससे जुडे प्रमुख मुद्दों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
2. उत्तर–दक्षिण संवाद से जुडे प्रमुख प्रयासों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. उत्तर–दक्षिण संवाद के दक्षिण के राज्यों की असफलता के कारणों का वर्णन कीजिए।
4. शीतयुद्धोत्तर युग में उत्तर–दक्षिण संवाद की प्रासांगिकता का वर्णन कीजिए।

3.7 पाठन सामग्री

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)

अध्याय–4

विश्व व्यापार संगठन

अध्याय का ढ़ांचा

4.1 प्रस्तावना

1.1.1 अध्याय के उद्देश्य

4.2 दक्षिण–दक्षिण सहयोग से अभिप्राय

4.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

4.4 दक्षिण–दक्षिण सहयोग के प्रयास

4.4.1 अंकटाड सम्मेलन

4.4.2 ग्रुप–77 की बैठकें

4.4.3 गुट–निरपेक्ष आन्दोलन के शिखर सम्मेलन

4.4.4 जी–15 सम्मेलन

4.4.5 दक्षिण आयोग

4.4.6 आसियान

4.4.7 सार्क

4.4.8 हिन्द महासागर क्षेत्रीय समूह

4.4.9 डी–8 शिखर सम्मेलन

4.5 सारांश

4.6 प्रश्नावली

4.7 पाठन सामग्री

4.1 प्रस्तावना

नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए विकसित और विकासशील देशों में उत्तर–दक्षिण संवाद की शुरूआत हुई। परन्तु विकसित राष्ट्रों के अपेक्षापूर्ण व अड़ियल व्यवहार के कारण उत्तर–दक्षिण सहयोग की बार सिरे नहीं चढ़ सकी। विकसित देशों पर ऋणों का भार लगातार बढ़ने लगा। उन्हें प्राप्त होने वाली अधिकतर विदेशी सहायता का हिस्सा ब्याज के भुगतान में ही खर्च होने लगा और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध अधिक भेदभावपूर्ण व जटिल होते गए। विकासशील देश यह महसूस करने लगे कि उत्तर दक्षिण सहयोग की बात करना उनके हितों को कोई फायदा नहीं पहुंचा सकता। इसलिए उन्हें दक्षिण–दक्षिण सहयोग की ही बात करनी चाहिए। इसलिए

विकासशील देशों ने दक्षिण के गरीब व अल्प विकसित देशों में ही सहयोग के आधार तलाशने शुरू कर दिए। इसी से दक्षिण–दक्षिण संवाद या सहयोग का नारा बुलन्द हुआ।

4.1.1 अध्याय के उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नई आर्थिक व्यवस्था के संघर्ष से अवगत कराना है। इस सन्दर्भ में अमीर, विकसित, उत्तर के देशों और गरीब, विकासशील, दक्षिण के राज्यों में दो स्तर पर प्रयास चल रहे है। एक उत्तर–दक्षिण के बीच संवाद तथा दूसरा दक्षिण–दक्षिण के बीच सहयोग। इस अध्याय में विकासशील देशों विभिन्न मंचों एवं संगठनों के माध्यम से आपस में सहयोग बढ़ाने की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने का प्रयास कर रहे है। इस अध्याय में सहयोग के इन्हीं बिन्दुओं से विद्यार्थियों को अवगत कराना है।

4.2 दक्षिण–दक्षिण सहयोग से अभिप्राय

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विकासशील देशों के लिए 'दक्षिण' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। 1945 के बाद समस्त विश्व राजनैतिक शब्दावली में दो भागों – उत्तर (विकसित) तथा दक्षिण (विकासशील) में बंट गया। उत्तर में सभी साम्राज्यवादी ताकतें या विकसित धनी देश थे। उत्तर में साम्राज्यवादी शोषण के शिकार रहे गरीब देश थे। जब इन देशों ने स्वतन्त्रता प्राप्त की तो इन्हें अपने को आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या से ग्रस्त पाया। स्वतन्त्र अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के निर्वहन में भी आर्थिक साधनों की कमी इनके आड़े आई। ऐसी स्थिति में अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को अधिक प्रासांगिक बनाने के लिए इन्होंने नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की स्थापना के लिए उत्तर के देशों से उदार रवैया अपनाने का आग्रह किया और इसके परिणामस्वरूप उत्तर–दक्षिण सहयोग के प्रयास शुरू हुए। लेकिन सकारात्मक परिणाम न निकलने से विकासशील देशों ने विकसित देशों के साथ सहयोग की बजाय आपसी सहयोग (दक्षिण–दक्षिण सहयोग) की शुरूआत की। इसके लिए आपसकी विचार–विमर्श की प्रक्रिया शुरू हुई अर्थात् दक्षिण–दक्षिण संवाद का जन्म हुआ। इसके कारण विकासशील देशों में अंतर्निर्भरता के प्रयास तेज हुए।

"विकासशील देशों को दक्षिण–दक्षिण संवाद की प्रक्रिया द्वारा आत्मनिर्भर बनाने तथा उनकी विकसित देशों पर निर्भरता कम करने की प्रक्रिया दक्षिण–दक्षिण सहयोग के नाम से जानी है।" दक्षिण–दक्षिण सहयोग के परिणामस्वरूप विकासशील देशों में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। इसके अंतर्गत तकनीकी आदान–प्रदान की प्रक्रिया तेज हुई। अति–पिछड़े हुए राष्ट्र भी इसका लाभ उठाकर अधिक विकासशील देशों की श्रेणी में शामिल होने लगे। आज दक्षिण–दक्षिण सहयोग अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित करने वाला प्रमुख तत्व है।

4.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दक्षिण–दक्षिण सहयोग का आरम्भ 1968 में आयोजित अंकटाड सम्मेलन (नई दिल्ली) से माना जाता है। इसके बाद 1970 में लुसाका सम्मेलन में भी इसकी आवश्यकता पर बल दिया गया। 1974 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा बुलाए गए विशेष सत्र में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के आह्वान में इसका विशेष जिक्र हुआ। 1976 में गुटनिरपेक्ष सम्मेलन तथा चौथे अंकटाड सम्मेलन में विकासशील देशों के आपसी व्यापार तथा सामूहिक अन्तर्निर्भरता की आवश्यकता पर बल दिया गया। 1981 में काराकास सम्मेलन में भी इसका उल्लेख हुआ। इसी वर्ष नई दिल्ली में 44 देशों के सम्मेलन में भी दक्षिण–दक्षिण संवाद और सहयोग की बात कही गई। इसमें सऊदी अरब, कुवैत, संयुक्त अरब अमीरात जैसे धनी देश बुलाए गए थे। ताकि वे अपने गरीब भाईयों के लिए कुछ सहायता दें। लेकिन इनकी भूमिका अधिक सहयोग की नहीं रही। इसके बाद अक्तूबर, 1982 में न्यूयॉर्क में G-77 (विकासशील देशों का समूह) के देशों ने आपसी व्यापार में वृद्धि करने की आवश्यकता पर जोर दिया। 1986 में गुटनिरपेक्ष देशों के हरारे सम्मेलन में उत्तर–दक्षिण संवाद की बजाय दक्षिण–दक्षिण संवाद पर अधिक ध्यान दिया गया। इसमें राबर्ट मुंगावे ने स्पष्ट कहा कि दक्षिण–दक्षिण सहयोग और सामूहिक आत्मनिर्भरता के बिना अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सुधार नहीं हो

सकता। इसके बाद उत्तर कोरिया की राजधानी प्योंगयांग में हुई विकासशील देशों के वित्त मंत्रियों की बैठक (1987) में भी दक्षिण–आयोग का गठन करके विकासशील देशों के आपसी सहयोग को नई दिशा देने का प्रयास किया गया। इसके बाद 1991 में G-15 (विकासशील देशों का समूह) के काराकास सम्मेलन में भी निर्धन राष्ट्रों के आपसी सहयोग को बढ़ाने की इसने भी तृतीय विश्व के देशों में आपसी सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया। आज सार्क, आसियान D-8, G-15, G-77 आदि संगठन भी इस दिशा में कार्य कर रहे हैं और इनके प्रयास निरंतर सफलता की ओर अग्रसर हैं।

4.4 दक्षिण–दक्षिण सहयोग के प्रयास

दक्षिण–दक्षिण सहयोग को बढ़ावा देने वाले प्रमुख मंच अंकटाड, ग्रुप–77, NAM, G-15 दक्षिण आयोग, आसियान, सार्क, हिमतक्षेस तथा D-8 हैं। इनके माध्यम से दक्षिण–दक्षिण संवादों का विकास हुआ और विकासशील देशों के आपसी सहयोग में वृद्धि हुई। इन संस्थाओं के प्रयासों का वर्णन निम्नलिखित है–

4.4.1 अंकटाड सम्मेलन

अंकटाड अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ के व्यापार एवं आर्थिक विकास पर हुए अधिवेशन से पूर्व विदेशी व्यापार तथा सहायता संबंधी समस्याओं पर प्रशुल्क देशों एवं व्यापार पर हुए सामान्य समझौते (GATT) के तहत विचार किया जाता था। GATT समझौता विकासशील देशों के हितों के अनुरूप नहीं था इसलिए विकासशील देशों की मांग पर आर्थिक सहयोग हेतु नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसे अंकटाड कहा जाता है। इसकी स्थापना संयुक्त राष्ट्र संघ के एक स्थायी अंग के रूप में 30 दिसम्बर, 1964 को हुई। इससे अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों में एक नए अध्याय की शुरूआत हुई। अंकटाड का छठा पेरिस सम्मेलन विकासशील देशों के आपसी सहयोग का अच्छा प्रयास था। इसके आठवें कार्टेगेना सम्मेलन (1992) में विकास की नई सांझेदारी की बात कही गई। जिसमें संसार के 40 विकासशील देशों ने द्विपक्षीय अधीकृत ऋण को माफ करने की अपील की और ऋण मांग व भुगतान सेवाओं में कटौती के लिए तुरन्त प्रयास करने को कहा गया। इसमें उरूग्वे वाता (GATT) पर असंतोष प्रकट किया। इसमें विकासशील देशों की बढ़ी हुई संख्या के आधार पर अधिकृत विकास सहयाता में भी वृद्धि करने की बात दोहराई। इसका नौंवा सम्मेलन मई 1996 में अफ्रीका के मिडरैंड शहर में सम्पन्न हुआ जिसमें 134 देशों के 2000 के लगभग अधिकारियों ने हिस्सा लिया। इसमें कहा गया कि जो विकासशील देश अधिक विकास को प्राप्त हो चुके हैं, उन्हें कम विकसित देशों की सहायता करनी चाहिए। इसके दसवें सम्मेलन (2000 में बैंकाक में) में विश्व व्यापार के मुद्दे पर आपसी बातचीत में गतिरोध उत्पन्न हो गया। इसमें बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली का लाभ अल्पविकसित देशों को उसके साथ जोड़कर पहुंचाने की बात पर जोर दिया गया। लेकिन विकसित देशों के अड़ियल व्यवहार के कारण इसे अधित सफलता नहीं मिल सकी। फिर भी अंकटाड का मंच विकासशील देशाों के मध्य आपसी बढ़ाने के लिए दक्षिण–दक्षिण संवाद का महत्वपूर्ण अंग है।

4.4.2 ग्रुप–77 की बैठकें

सभी नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्र संघ के सदस्य बने, उनमें से 2/3 सदस्य अफ्रीका से थे। इन देशों ने अपने आप को G-77 कहना शुरू कर दिया। इस संगठन की स्थापना U.N.O. के तत्वाधान में 1964 में ही की गई। इसके अधिकतर सदस्य तृतीय विश्व के देश हैं। अपने समान आर्थिक हितों के कारण ये देश नई विश्व अर्थव्यवस्था की स्थापना की बात करते हैं। इसकी 1982 की नई दिल्ली में बैठक के अंतर्गत 44 विकासशील राष्ट्रों के सैकड़ों प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें सार्वभौम अर्थव्यवस्था में हो रहे ह्रास पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गई और औद्योगिक देशों के संरक्षणवाद की भी व्यापक निन्दा की गई। इसमें कृषि में आत्म–निर्भरता, विश्व बैंक (ऊर्जा) में

परस्पर सम्बन्ध का निर्माण, तकनीकी सहयोग के लिए बहुराष्ट्रीय वित्तीय सुविधा का निर्माण आदि बातों पर ध्यान दिया गया। इसमें सामूहिक आत्म–निर्भरता के लिए सहयोग को महत्व दिया गया।

G-77 का एक अंतरंग (internal) समूह भी है जिसे G-24 के नाम से जाना जाता है। यह विकासशील देशों के विभिन्न मुद्दों पर बातचीत करता है। इसके वित्त मन्त्रियों की 49वीं बैठक (वॉशिंगटन, 1993) में मुद्रा मामलों में दक्षिण–दक्षिण सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया। यह G-77 के साथ मिलकर ही कार्य करता है। G-77 में 2000 में हुए हवाना सम्मेलन में विकासशील देशों के विकास मुद्दों को प्राथमिकता देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की आवश्यकता महसूस की गई। इसमें अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से प्रार्थना की गई कि उसे ऐसे प्रयास करने चाहिए जिनसे विकासशील देशों के आर्थिक विकास में आई रूकावटों का निराकरण हो। इन रूकावटों को हटाने के लिए पारस्परिक सांझेदारी व स्वतन्त्रताओं के आधार पर विकसित तथा विकासशील देशों की वार्ता का आह्वान किया गया। आज G-77 में ऐसे देश हैं जो साम्राज्यवादी शोषण का शिकार रह चुके हैं। यह संगठन एशिय, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के ऐसे देशों की एकता व सहयोग का प्रतीक है। ये देश समुद्री कानून, शस्त्र नियंत्रण, अणु ऊर्जा, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार आदि मुद्दों पर लिए जाने वाले अंतर्राष्ट्रीय निर्णयों को विकासशील देशों के हितों की तरफ मोड़ना चाहते हैं ताकि विकासशील देश भी आर्थिक विकास की धारा में शामिल हो सकें। इस प्रकार कहा जा सकता है कि G-77 दक्षिण–दक्षिण सहयोग को मजबूत बनाने का अच्छा प्रयास है।

4.4.3 गुट–निरपेक्ष आन्दोलन के शिखर सम्मेलन

गुट–निरपेक्ष आन्दोलन का जन्म 1961 के बैलग्रेड, सम्मेलन में हुआ। इसमें अधिकतर नवोदित स्वतन्त्र विकासशील देश शामिल हैं। 1975 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के विदेश मन्त्रियों के लीमा सम्मेलन में विकासशील देशों को आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए संहति कोष की स्थापना करने की स्वीकृति हुई। यह दक्षिण–दक्षिण सहयोग का महत्वपूर्ण प्रयास था। 1976 में गुटनिरपेक्ष देशों के कोलम्बो शिखर सम्मेलन में बहुराष्ट्रीय औषधीय कम्पनियों पर निर्भरता की बजाय परस्पर सहयोग की योजना तैयार करने पर बल दिया। इसमें कृषि, खाद्यान्न तथा संचार–अवरोधों के मामलों पर भी नए उपाय तलाशने की बात कही गई। सबसे अधिक महत्वपूर्ण सुझाव तृतीय विश्व बैंक की स्थापना के बारे में दिया गया। इस तरह इस सम्मेलन में दक्षिण–दक्षिण सहयोग में वृद्धि करने वाले महत्वपूर्ण सूझाव दिए गए। 1986 के हरारे सम्मेलन में भी उत्तर–दक्षिण संवाद की बजाय दक्षिण–दक्षिण सहयोग पर बल दिया गया। इसमें विकासशील देशों में आपसी सहयोग को बढ़ाने के लिए एक आयोग गठित करने का निर्णय लिया गया। दक्षिण–दक्षिण सहयोग पर गुट–निरपेक्ष देशों के विदेश मन्त्रियों की एक बैठक जून, 1987 में भी हुई। इसमें विकासशील देशों के बीच सहयोग को बढ़ाने व गतिशील बनाने के लिए नए ढंग प्रयोग करने पर जोर दिया गया। इसमें विकासशील राष्ट्रों की सामूहिक आत्म–निर्भरता की भावना को सुदृढ़ बनाने पर बल दिया गया। सितम्बर 1989 के बेलग्रेड सम्मेलन में भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने उत्तर–दक्षिण सहयोग में वृद्धि करने के लिए संस्थागत ढांचे में बदलाव लाने की बात कही। इस सम्मेलन में आपसी पूंजी निवेश प्रवाह तथा आपस में प्राथमिकता के आधार श्पर तकनीकी हस्तांतरण को मुख्य मुद्दा बताया गया। इसके बाद 1992 व 1995 में गुटनिरपेक्ष देशों के विदेश मंत्रालय की 1996–97 की रिपार्ट में कहा गया कि कुछ के पास पर्याप्त धन राशि है तथा कुछ के पास अच्छी तकनीक है। इसलिए उनके लिए यही हितकर होगा कि वे उत्तर के देशों की तरफ भागने की अपेक्षा आपस में ही पूंजी व तकनीक का आदान–प्रदान करें। इससे दक्षिण–दक्षिण सहयोग को बढ़ावा मिलेगा। सम्मेलन में आपसी सहयोग बढाने पर बल दिया गया और विकसित देशों पर उनकी निर्भरता कम होगी। इस प्रकार गुट–निरपेक्ष आन्दोलन ने भी दक्षिण–दक्षिण सहयोग को बढ़ाने की दिशा में एक सुदृढ़ मंच का काम किया।

4.4.4 जी–15 सम्मेलन

G-15 विकासशील देशों का एक समूह है। यह तृतीय विश्व के विकास के लिए एक आन्दोलन का रूप धारण करता

जा रहा है। इसका पहला शिखर सम्मेलन 1 जून, 1990 को कुआलालम्पुर में हुआ। इसका उद्देश्य दक्षिण–दक्षिण सहयोग की कार्यवाही में गति लाना था। इस सम्मेलन में चिकित्सा और सुगन्धित पौधों के लिए एक जिंस बैंक की स्थापना तथा सौर ऊर्जा, सिंचाई पम्प, छोटे रेफ्रीजरेटर, कोर्रस और डायर्स के वास्ते सौर ऊर्जा की कार्यप्रणाली की विकास–इन दो परियोजनाओं पर आपसी सहयोग बढ़ाने पर बल दिया गया। G-15 के दूसरे शिखर सम्मेलन (काराकास, 1991) में गरीब देशों को अमीर देशों के विरूद्ध एकजुट रहने का आह्वान किया। इसमें इस बात पर बल दिया गया कि वे ऐसी आर्थिक नीतियां बनाए कि उन्हें अपनी अर्थव्यवस्था का विकास करने के अवसर प्राप्त हो सकें। इसमें बाहरी ऋणों के विषय में सह–उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर ठोस उपाय करने पर भी जोर दिया गया। इसके बाद G-15 के डकार सम्मेलन (1992) में भी नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के मुद्दे पर सामूहिक कार्यवाही पर बल दिया गया। G-15 के पहले शिखर सम्मेलन की योजनाओं को आगे बढ़ाते हुए सात नई परियोजनाओं को इस सम्मेलन में शामिल किया गया। भारत में G-15 को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अफ्रीका में एक पेशेवर प्रशिक्षण संस्थान स्थापित करने का भी आग्रह किया गया। इसके बाद G-15 का चौथा शिखर सम्मेलन दिसम्बर, 1993 में नई दिल्ली में हुआ। इसमें अधिकतर शासनाध्यक्ष शामिल नहीं हो सके। इसलिए यह अधिक सफल नहीं रहा। इसके पश्चात G-15 के अर्जेन्टीना सम्मेलन (1995) में विकासशील देशों के बीच व्यापार और निवेश के उदारीकरण, सरलीकरण और संवर्द्धन तथा तकनीक के हस्तांतरण का मार्ग प्रशस्त हुआ। G-15 के हरारे शिखर सम्मेलन (1996) में भी व्यापारिक मुद्दे ही प्रमुख रहे। इसमें विकसित देशों के रम मानकों का विरोध किया गया। G-15 के इस सम्मेलन की संयुक्त विज्ञप्ति में यह कहा गया कि WTO को विकसित देशों के दबाव में नहीं आना चाहिए। भारत ने कहा कि श्रम मुद्दे व्यापार से संबंधित न होने के कारण विश्व व्यापार संगठन से बाहर ही रखे जाने चाहिए। विकासशील देशों के समूह G-15 के सातवें सम्मेलन (कुआलालम्पुर, 1997) में 16वें सदस्य के रूप में केन्या को प्रवेश दिया गया। इस सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास, विकासशील देशों की चिन्ताओं के मसले और उनसे निपटने की नीतियों पर विचार किया गया। इसमें विशेष रूप से निवेश और तकनीकी सहयोग हा विस्तार करके दक्षिण–दक्षिण सहयोग को मजबूत बनाने पर बल दिया गया। G-15 के नौवें शिखर सम्मेलन (जमैका, 2000) में वैश्वीकरण की प्रक्रिया में उचित परिवर्तनों की मांग उठाई गई। इस तरह G-15 के सम्मेलनों द्वारा विकासशील देशों में आपसी सहयोग व समन्वय की भावना का विकास किया गया है। अपने सीमित समय में ही G-15 एक शक्तिशाली कार्यक्रम के रूप में उभरा है। यह निरन्तर दक्षिण–दक्षिण संवाद को आगे बढ़ाते हुए विकासशील देशों में आपसी तकनीकी सहयोग व पूंजी निवेश द्वारा आत्मनिर्भरता की स्थापना के प्रयास करने का कृतसंकल्प है।

4.4.5 दक्षिण आयोग

हरारे निर्गूट सम्मेलन में 1986 में विकासशील देशों में आपसी सहयोग में वृद्धि करने के लिए दक्षिण आयोग की स्थापना का प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद 2 अक्तूबर, 1987 को इस अंतर्राष्ट्रीय संगठन ने जेनेवा में अपना कार्यालय खोला। तंजानिया को इस 28 सदस्यीय आयोग का अध्यक्ष तथा भारत को महासचिव का पद प्राप्त हुआ। आयोग के उद्घाटन पर इसके अध्यक्ष न्येरेरे ने कहा कि "अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं और ऋणदाता देशों द्वारा लागू की गई नीतियों से विकासशील देशों को निराशा ही हुई है।" इसकी दूसरी बैठक मार्च, 1988 को कुआलालम्पुर में हुई। इस बैठक में सदस्यों ने आत्मनिर्भरता के लिए दक्षिण–दक्षिण सहयोग तथा उत्तर दक्षिण सम्बन्धो की समस्याओं पर एकजुट होने का वचन लिया। इसकी अध्यक्षता भी तंजानिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे ने की। इस तरह यह आयोग दक्षिण–दक्षिण सहयोग को आगे बढ़ाने मे महत्वपूर्ण करता आ रहा है।

4.4.6 आसियान

इसकी स्थापना 1967 में हुई। इसका पूरा नाम है – दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रसंघ। इसमें लाओस, कम्बोडिया,

वियतनाम, ब्रेनेई, थाईलैंड, सिंगापुर, फिलीपींस, मलेशिया तथा इंडोनेशिया शामिल है। इसका उद्देश्य दक्षिण–पूर्वी एशिया में आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है। यह कृषि, व्यापार तथा उद्योग के क्षेत्र में साझे मामलों पर परस्पर सहयोग को बढ़ावा देता है। इसका लक्ष्य 2003 तक इस क्षेत्र को मुफ्त व्यापार क्षेत्र बनाना है। 1998 में इसकी पांचवीं बैठक मनीला में हुई। इसमें पूंजी निवेश, व्यापारिक, सांस्कृतिक तथा विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में सहयोग बनाए रखने तथा बढ़ाने की नीति का अनुसरण किए जाने का समर्थन किया। यह संगठन निरंतर प्रगति की राह पर कार्य करते हुए दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में आर्थिक विकास के लिए सहयोग करने की दिशा में कार्यरत है।

4.4.7 सार्क

इसकी स्थापना 1985 में हुई। इसका पूरा नाम 'दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ' है। इसमें भारत, नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, बंगलादेश, श्रीलंका तथा मालद्वीप हैं। इसका मुख्य उद्देश्य दक्षिण ऐशिया में विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा देना है। दक्षिण एशिया व्यापार समझौता 'साप्टा' (SAPTA) स्वीकार करने के बाद दक्षिण एशिया में आर्थिक सहयोग के नये युग की शुरूअबात हुई। 1987 के काठमाण्डू शिखर सम्मेलन में आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ाने पर विचार हुआ। इसमें दक्षिण–एशिया को परमाणु विहीन क्षेत्र घोषित करने पर विचार हुआ। इसके 1991 में हुए कोलम्बो सम्मेलन में तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में आपसी सहयोग को उचित माना गया। इसका 11वां शिखर सम्मेलन जनवरी, 2002 को नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में सम्पन्न हुआ। इसमें व्यापार, वित्त तथा निवेश में आपसी सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया गया ताकि दक्षिण एशिया एशिया अर्थव्यवस्था के एकीकरण की ओर अग्रसर हो सके। इस तरह लगातार यह संगठन दक्षिण एशिया के देशों में आपसी सहयोग की प्रवृति का विकास करने की दिशा में कार्य कर रहा है।

4.4.8 हिन्द महासागर क्षेत्रीय समूह

इसकी स्थापना मार्च, 1987 में हुई। इसका पूरा नाम – हिन्द महासागर तटीय क्षेत्रीय सहयोग संगठन। इसमें हिन्द महासागर के तट पर बसे हुए देश – इण्डोनेशिया, भारत, आस्ट्रेलिया, मोजाम्बिक, मलेशिया, श्रीलंका, सिंगापुर, केनिया, मॉरीशश आदि देश शामिल हैं। इसका उद्देश्य इन देशों में आपसी सहयोग को बढ़ावा देना है और आर्थिक एकजुटता के आधार पर हिन्द महासागर के बाजार का निर्माण करना है। यह संगठन क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने की दिशा में सहयोग की भावना का विकास कर रहा है।

4.4.9 डी–8 शिखर सम्मेलन

यह विकासशील देशों का समूह है। यह संगठन 8 मुस्लिम विकासशील देशों में आपसी सहयोग के आधार पर अपनी अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए कार्य करता है।

4.5 सारांश

इस तरह दक्षिण–दक्षिण संवाद को मजबूत बनाकर दक्षिण के देशों को एकजुट किया जा सकता है। इसी पर इन देशों की आर्थिक आत्मनिर्भरता का विकास निर्भर करता है। विकासशील देशों में पर्याप्त मात्रा में संसाधन हैं। कुछ देशों के पास तो पूंजी है और कुछ के पास तकनीकी ज्ञान है। इन देशों को विकसित देशों से मद्द लेनी की बजाय आपस में ही तकनीकी ज्ञान व पूंजी का हस्तातरण करना चाहिए। लेकिन इसके रास्ते में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इन देशों में आपसी मतभेद हैं। ये आपसी सहयोग की बजाय विकसित राष्ट्रों की तरह अधिक झुकाव रखते हैं। आज एशिया के तेल निर्यातक देश चाहें तो वे गरीब विकासशील देशों की आर्थिक सहायता कर सकते हैं, लेकिन समन्वित दृष्टिकोण के अभाव में वे ऐसा करने में अयोग्य हैं। यदि विकासशील देशों को आत्मनिर्भर बनना है तो पारस्परिक मतभेदों को भुलाकर, उन्हें एक मंच पर आना ही होगा। इसके बिना उनका कल्याण सम्भव नहीं

है। यदि वे एकजुट होकर उत्तर के देशों पर अपना दबाव बनाने में सफल होते हैं तो अवश्य ही वे नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के निर्माण के लिए विकसित राष्ट्रों को मना सकेंगे और वर्तमान अन्यायपूर्ण और असमान आर्थिक सम्बन्धो का अंत करके दक्षिण के देशों में नए युग की शुरूआत करेंगे।

4.6 प्रश्नावली

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दक्षिण–दक्षिण सहयोग के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए।
2. दक्षिण–दक्षिण सहयोग से आपका क्या अभिप्राय है। इस सहयोग हेतु किन–किन मंचों/संगठनों में बातचीत हो रही है?
3. शीतयुद्धोत्तर युग में दक्षिण–दक्षिण सहयोग की प्रासांगिकता का वर्णन कीजिए।
4. विकासशील देशों के मध्य आपसी आर्थिक सहयोग स्थापित न होने के कारणों का वर्णन कीजिए।

4.7 पाठन सामग्री

1. महेन्द्र कुमार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष (आगरा, 1984)
2. हेंस जे. मारगेन्थाऊ, पॉलिटिक्स अमंग नेशंज (कलकत्ता, 1972)
3. पीटर कलवोसिरेसी, वर्ल्ड पॉलिटिक्स सिंस, 1945 (लन्दन, 1987)
4. नार्मन डी. पामर एवं होवर्ड डी पकिंज, इन्टरनेशनल रिलेसन्ज, (कलकत्ता, 1970)
5. जॉन बेलिस एवं स्टीव स्मीथ, सम्पा०, ग्लोबलाईजेसन ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स (न्ययार्क, 2002)
6. अनीकचटर्जी, इन्टरनेशनल रिलेसंज टूडे (दिल्ली, 2010)
7. रूमकी बासु, सम्पा०, इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स : कन्सेपटस, थ्यौरिज एण्ड इश्यूज, (सेज, 2012)
8. क्रिस्टीयन रूसेमित एवं डंकन एनीडल, सम्पा०, दॉ ऑक्सफोर्ड हेंडबुक ऑफ इन्टरनेशनल रिलेसंज, (ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रैस, 2010)